सन्धि-सन्देश

(खंड काव्य)

स्वर्गीय

श्री दामोदरसहाय सिंह 'कविकिंकर'

सोल एजेन्ट

श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड

नयाटोला, पटना-४

प्रकाशक

हिन्दी मन्दिर

शीतलपुर, बरेजा, सारन (बिहार)

मूल्य—१॥)

प्रथम संस्करण १९५२ ई०

मुद्रक

श्री मणिशंकर लाल

श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना-४

'सन्धि-सन्देश' के विषय में

'सन्धि-सन्देश' स्वर्गीय पिताजी की अन्तिम काव्य-कृति है। १९२९-३० की बात है। बीमारी का शिकार होकर पिताजी ने नौकरी से आठ महीने की छुट्टी ले ली थी और विश्राम के निमित्त घर पर चले आये थे। यह काव्य-कृति उसी समय की है।

मुझे याद है, संध्या का समय था। पिताजी बाहर के बरामदे में चारपाई पर मसनद के सहारे लेटे मुझे अपने प्रारम्भिक जीवन के कतिपय साहित्यिक संस्मरण सुना रहे थे। बातों-बात में मैंने उनसे कहा—"बाबूजी! आपने स्फुट चीजें तो बहुत लिखीं। अब कोई प्रबन्धात्मक काव्य भी लिख डालिए जो आपकी कवि-प्रतिभा की अमर निधि के रूप में सुरक्षित रह सके।" मेरे ऐसा कहते ही उन्होंने प्रश्न किया—"कथानक?" और फिर मुझसे कहा—"पुस्तकालय से महाभारत की सभी जिल्दें निकाल लाओ।" उस रात वे काफी देर तक महाभारत के पन्ने उलटते-पुलटते रहे।

दूसरे दिन सुबह उन्होंने मुझसे कहा—"मैंने कथानक का चुनाव तो कर लिया। पांडवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान श्रीकृष्ण शांति के दूत बनकर कौरव-सभा में जाते हैं और संधि-प्रस्ताव को ठुकराते देखकर महाभारत की घोषणा करके लौट आते हैं।"

उन्होंने मुझे बतलाया कि सूर से लेकर आजतक के हिन्दी कवि ने श्रीकृष्ण के नाना रूपों पर गीत और कविताओं के रूप में काव्य कृतियाँ लिखी हैं, परन्तु उनके शांति-दूत-रूप पर अब तक कोई कृति देखने में नहीं आयी। शांति-दूत के रूप में श्रीकृष्ण का चरित्र उन नानाविध रूपों से तनिक भी कम महत्त्व का नहीं है।

यह वह समय था जब महात्मा गाँधी के सत्य-अहिंसा का प्रयोग और उनके शांतिमय सत्याग्रह का प्रभाव जनता पर जादू डाल रहा था। सन् ३० के आन्दोलन की भूमिका भी बँध रही थी। आज मुझे लगता है, कदाचित् इसी प्रभाव से अनुप्राणित होकर पिताजी ने श्रीकृष्ण के शांति-दूत-रूप को ही अपने काव्य का विषय बनाया।

उसी रात उन्होंने इस काव्य का श्रीगणेश किया। संध्या होते ही वे पुस्तकालय के दालान में बैठ जाते और लालटेन की रोशनी में रात के दो-दो बजे तक बिना खाये-पिये लिखते रहते। रात को लिखते, सुबह को सुनाते। पढ़ने का काम दिन में करते। रात को केवल लिखना। बस, उन्होंने अपनी यही दिनचर्या बना ली थी। अस्व-स्थता की हालत में यह परिश्रम देखकर उन्हें रोकने की इच्छा होती, मगर वे काव्य-कार्य में किसी प्रकार की बाधा बर्दाश्त नहीं करते थे। इस डर के मारे उनसे कभी कुछ कहने का साहस नहीं होता था। एक दिन माँ ने दबी-जुबान कुछ कहा भी तो वे ऐसे बिगड़े कि किसी को फिर कुछ कहने की हिम्मत न हुई। परन्तु यह क्रम अधिक दिनों तक न रहा। एक सप्ताह में ही यह काव्य पूरा हो गया।

उनकी छुट्टी समाप्त हो चुकी थी और हम सभी उनके साथ ही उनकी नौकरी पर चले गये थे। उनकी यह राय हुई कि यह पांडुलिपि पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और पं० रामनरेश त्रिपाठी के यहाँ संशोधनार्थ और सुझाव के लिए भेजी जाय। चतुर्वेदीजी और त्रिपाठीजी, दोनों ही पिताजी के अन्यतम मित्रों में से थे, और इन दोनों ही व्यक्तियों

से उनका पत्र-व्यवहार बराबर चलता था। मैंने उस पांडुलिपि की दो प्रतियाँ कराकर उक्त दोनों सज्जनों के पास भेज दी। चतुर्वेदीजी ने उसे देखकर अपने सुझाव भी भेजे जिनमें से कुछ पिताजी को पसंद भी आये और उनके अनुसार उन्होंने कुछ परिवर्तन भी कर दिये। त्रिपाठीजी उन दिनों ग्रामगीतों में व्यस्त थे। प्रयत्न करने पर भी इसके लिए वे समय नहीं निकाल सके और वह प्रति उन्हीं के यहाँ पड़ी रह गयी।

अस्वस्थता के कारण पिताजी ने ५ नवम्बर १९२१ को पेंशन ले ली और गाँव पर आ गये। उन्हें 'सन्धि-सन्देश' के वर्तमान रूप से सन्तोष नहीं था और उनकी इच्छा थी कि इसकी एक आवृत्ति स्वयं ही करके आवश्यक संशोधन कर दें। इस बीच मैंने भी पटने में नौकरी कर ली थी। यदि मैं उनके साथ होता, तो शायद यह काम हो भी गया होता। इधर उन्होंने 'शिक्षा का इतिहास' लिखना भी आरम्भ कर दिया था। परन्तु उनका रोग बढ़ता गया और वे न तो इस इतिहास-लेखन का ही कार्य पूरा कर सके और न 'सन्धि-सन्देश' की आवृत्ति ही।

एकाएक उनकी बीमारी बढ़ी। मैं घर पर था नहीं। बाद में मैंने सुना कि एक दिन उन्होंने अपनी सारी पांडुलिपियाँ मंगायीं और उन्हें देखकर फफक पड़े। मुझे ७ जून, १९२१ को उनकी शोचनीय अवस्था का तार मिला। ८ की सुबह मैं घर पहुँचा। देखा, उन्हें वैतरणी करा दी गयी है। उस समय तक उनकी बोली बन्द हो गयी थी। वे आँखें बन्द किये पड़े थे। मेरे आने पर उन्होंने एक बार अपनी आँखें खोलीं, मेरी ओर थोड़ी देर तक देखा और फिर सदा के लिये आँखें मूद लीं उनका मुखमण्डल शांत और गम्भीर था, और

तब से 'स्निग्ध-सन्देश' की पांडुलिपि बहुत दिनों तक पड़ी रही। हाँ, इस काव्य का प्रथम सर्ग कलकत्ते से प्रकाशित मासिक 'सरोज' में प्रकाशित भी हुआ था। इस बीच मैंने अवसर पाकर अपने मित्र डॉक्टर विश्वनाथ प्रसाद, प्रो० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन' और भाई जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' से यह पांडुलिपि दिखलायी। उन लोगों ने इसे जल्द प्रकाशित करा देने के लिये मुझे प्रोत्साहित किया। तब से यह पांडुलिपि यों ही पड़ी रही। जब-तब मैंने इसके प्रकाशन के लिये कुछ प्रकाशकों से कहा भी, परन्तु छापने के लिये कोई तैयार न हुआ। हिन्दी कविता भी तब तक बहुत आगे बढ़ आयी थी और इस पुराने ढंग की चीज के लिये बाजार भी नहीं था। ऐसी स्थिति में कौन प्रकाशक तैयार होता? कौन इसके ऐतिहासिक मूल्य को, पैसों के सामने महत्त्व देता? ऐसे प्रकाशक भी मुकर गये, जिनसे उनकी काफी घनिष्ठता थी, और जिन्होंने उनके प्रभाव से लाभ उठाकर हजारों-हजार कमाया था।

१९४८ में मैं प्रयाग गया था। वहाँ के 'मानसपीयूष' कार्यालय से 'त्रिवेणी' नाम की एक मासिक पत्रिका निकलनेवाली थी। उसके स्वामी ने इस काव्य को खंड-खंड करके छापना और उसी कम्पोज हुए मैटर से इसे अलग पुस्तकाकार निकालना मंजूर किया। मैंने पांडुलिपि की एक प्रति कराकर उनके पास भेज दी, मगर बहुत दिनों तक उनका भी कोई पत्र नहीं आया। 'त्रिवेणी' भी नहीं निकली। मैंने बाद में पता लगाया तो मालूम हुआ कि मानसपीयूष कार्यालय के स्वामी का देहान्त हो गया। इस बीच वह पांडुलिपि भी, जो मेरे पास थी, खो गयी और काफी खोज करने पर भी न मिली। मैंने पं० रामनरेश त्रिपाठी को लिखा, परन्तु उनका कोई उत्तर नहीं आया। संयोग से गत वर्ष वह भूली हुई मूल पांडुलिपि अचानक मिल गयी। परन्तु उसके पन्ने अस्त-व्यस्त हो गये थे, और कागज भी पुराना पड़ने के

कारण कहीं-कहीं टूट गया था। मेरे ज्येष्ठ पुत्र पांडेय कपिल ने उसके पन्नों को जोड़-जाड़ कर किसी प्रकार उसकी प्रेस-प्रति तैयार की रुपयों का प्रबन्ध भी किसी-किसी तरह किया गया। और अब इसे मैं स्वयं ही प्रकाशित कर रहा हूँ।

पिताजी की पचीसों पुस्तकें अभी तक अप्रकाशित पड़ी हैं, जिनमें कुछ कविता-संग्रह भी हैं, कुछ निबन्ध, आलोचना और कुछ अन्य प्रकार की चीजें। परन्तु अभी मैं इसे ही प्रकाशित कर रहा हूँ। धीरे-धीरे मैं उनकी सारी पुस्तकें प्रकाशित करूँगा, यदि कोई हिन्दी-प्रेमी प्रकाशक नहीं मिला। उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करने का ऋण मेरे सिर पर ज्यादा है, और इससे मुक्ति पाने के लिए मैं सर्वदा प्रयत्नशील रहूँगा।

कविवर श्री ब्रजकिशोर 'नारायण' तथा मेरे ज्येष्ठ पुत्र पांडेय कपिल ने मिल-जुल कर इस पुस्तक की छपाई में प्रेस-सम्बंधी सभी आवश्यक कार्य किए हैं। यह पुस्तक 'नारायण' जी की ही देखरेख मे छपी है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। आवरण-चित्र मेरे द्वितीय पुत्र पांडेय सुरेन्द्र ने, जो शांतिनिकेतन में पढ़ रहा है, बनाया है। कपिल और सुरेन्द्र के कर्त्तव्य-पालन पर भी मुझे प्रसन्नता और संतोष है।

कविकिंकर-कुटीर, शीतलपुर,
डाकघर—बरेजा, सारन (बिहार)
१५ मई १९५३।

—पांडेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

स्वर्गीय श्रीकविकिंकरजी का परिचय

(सन् १९२५ में 'सुधा-सरोवर' की भूमिका में आचार्य शिवपूजन सहायजी द्वारा लिखित परिचय का एक अंश)

श्रीदामोदरसहायसिंहजी 'कविकिंकर' आजकल सारन (बिहार) जिले के डिस्ट्रिक्ट-इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स हैं। आप हिन्दी के बहुत पुराने लेखक और कवि हैं। 'सरस्वती', 'मर्यादा' आदि प्रसिद्ध पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रायः देखने में आती थीं। आज आपकी कविताएँ 'सरस्वती', 'माधुरी' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं में देखने को मिलती हैं। गद्य और पद्य—दोनों की रचना में आप समान रूप से कुशल हैं। पहले तो आप केवल ब्रजभाषा में ही कविता किया करते थे, और इस क्षेत्र में आपने यथेष्ठ सफलता और कीर्त्ति भी पाई है। पर कुछ दिनों से आप खड़ी बोली में भी उसी शान-बान से बड़ी सरस-सुन्दर कविता करने लगे हैं। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने चतुरस्र सफलता पाई है, यह सबसे बढ़कर प्रशंसा और गौरव की बात है।

आपका शुभ जन्म १४ दिसम्बर (१८७५) ई० को बिहार प्रांत के छपरा शहर में हुआ था, जहाँ आपके पिता—मुंशी शिवशंकर सहायसिंहजी—मुख्तार थे। वह नगर के बड़े यशस्वी और प्रतिष्ठित

स्वर्गीय कविकिंकरजी

न्म–१४ दिसम्बर, १८७५ : मृत्यु–८ जून, १९३

पुरुष थे। आपकी माता तो आपके बहुत बचपन में ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं; पर आपके पिताजी भी आपको ग्यारह साल की उम्र में ही अनाथ कर गये। उस समय आपकी शिक्षा-दीक्षा आपके पूज्य चचेरे भाई मुंशी हीरालाल साहब की देख-रेख में होने लगी। आप बचपन से ही बड़े होनहार और प्रतिभाशाली थे—चौदह वर्ष की उम्र में ही छात्रवृत्ति के साथ मिडिल वर्नाक्युलर पास किया—और छपरा जिला स्कूल से १८९४ ई० में एंट्रेंस, तथा १८९७ ई० में बी० एन० कालेज (पटना) से एफ० ए०; किन्तु इसके बाद घरेलू झंझटों के कारण बी० ए० की परीक्षा में पास न हो सके। अन्त को १९०० ई० में रिविलगंज (छपरा) के मिडिल इंगलिश स्कूल में आप प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए; फिर कुछ दिनों तक छपरा जिला स्कूल में भी शिक्षक रहे, और बाद को १९०३ ई० में मुंगेर जिले में स्कूलों के सब-इन्स्पेक्टर हो गये। तब से बिहार के भिन्न-भिन्न जिलों—गया, आरा, दरभंगा आदि में उक्त पद पर काम करते-करते अब कई साल से आप छपरे के डिस्ट्रिक्ट-इन्स्पेक्टर हुए हैं, जहाँ आपने बड़ी योग्यता से अपना उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य सम्पन्न करके प्रचुर प्रतिष्ठा और कीर्ति अर्जन की है। हाँ, इसी दरम्यान १९१६ ई० में आपने एल० टी० परीक्षा भी पास कर ली। किन्तु इतने महत्त्वपूर्ण पद पर रहकर भी आप हिन्दी की सेवा बड़ी लगन से किये जा रहे हैं, और आपका हिन्दी-साहित्य-विषयक ज्ञान बड़ा ही उन्नत एवं भरपूर है। साहित्यानुराग तो आपके हृदय में बालपन से ही झलकने लगा था—प्रायः इतिहास-भूगोल आदि पाठ्य विषयों को स्वयं पद्यबद्ध बनाकर आप याद किया करते थे, और अपने सहपाठियों के मनोविनोद के लिए भी प्रायः कविताएँ बना दिया करते थे। आपकी कुशाग्र बुद्धि और तीक्ष्ण प्रतिभा देखकर केवल आपके शिक्षक ही संतुष्ट न रहते थे, बल्कि उस समय के डिपुटी-इन्स्पेक्टर-आफ-स्कूल्स पं० शिवनारायण त्रिवेदी तो

इतने प्रसन्न एवं आकृष्ट हुए कि आपको सहर्ष पुरस्कार भी दिया था।

आपका निवास-स्थान सारन-(छपरा)-जिले का शीतलपुर नामक ग्राम है, जो बड़े ही प्रतिष्ठित कायस्थों की एक अच्छी बस्ती है। आप भी दूसरे श्रीवास्तव कायस्थ—पांडेय वंश—के हैं। आपके शुद्ध आचार-विचार और आपकी सच्ची आस्तिकता को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि आप वास्तव में शिक्षित कायस्थ-वर्ग के लिए एक आदर्श व्यक्ति हैं। आपके पूर्वज मुगल बादशाह शाहजहाँ के समय में राजकीय प्रतिष्ठा पाकर चिरैयाकोट से आकर उक्त शीतलपुर में बसे थे। आपने अपने गाँव में 'हिन्दी मन्दिर' नाम से एक प्रकाशन-भवन तथा पुस्तकालय भी खोल रखा है, जिसके द्वारा 'मोदक, मोहनभोग, रसाल, घरौंदा' आदि कई बालोपयोगी रोचक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बड़े सौभाग्य एवं सन्तोष की बात है कि आपके सुयोग्य पुत्र श्रीजगन्नाथप्रसाद सिंह भी हिन्दी के सेवा में ऐसे तत्पर होते जा रहे हैं कि अब उन्होंने हिन्दू-विश्वविद्यालय से कालेज-शिक्षा छोड़कर सर्वतोभावेन हिन्दी-सेवा को ही अपना लिया है—फलस्वरूप उनकी अनेक बालोपयोगी रचनाएँ 'माधुरी', 'मनोरमा', 'बालक' आदि पत्रों में अक्सर छपती रहती हैं।

आपके वास्तविक साहित्यिक जीवन का सूत्रपात उस समय हुआ था, जब आप छपरे के जिला स्कूल में शिक्षक थे, जहां स्वनामधन्य स्व० साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास 'सुकवि' भी शिक्षक थे, और उन्हींके चिर-संसर्ग से आपमें हिन्दी-सेवा की विशेष प्रवृत्ति हुई। व्यासजी का आप पर अविरल स्नेह था और वह प्राय: आपकी प्रतिभा की बड़ी प्रशंसा किया करते थे, जिससे उत्साहित होकर आप पक्के साहित्य-व्यसनी हो गये। फिर तो अपनी साहित्यिक अनुरक्ति के कारण आप व्यासजी के ऐसे वात्सल्य-भाजन हुए कि उन्होंने अपने 'साहित्य-नवनीत'
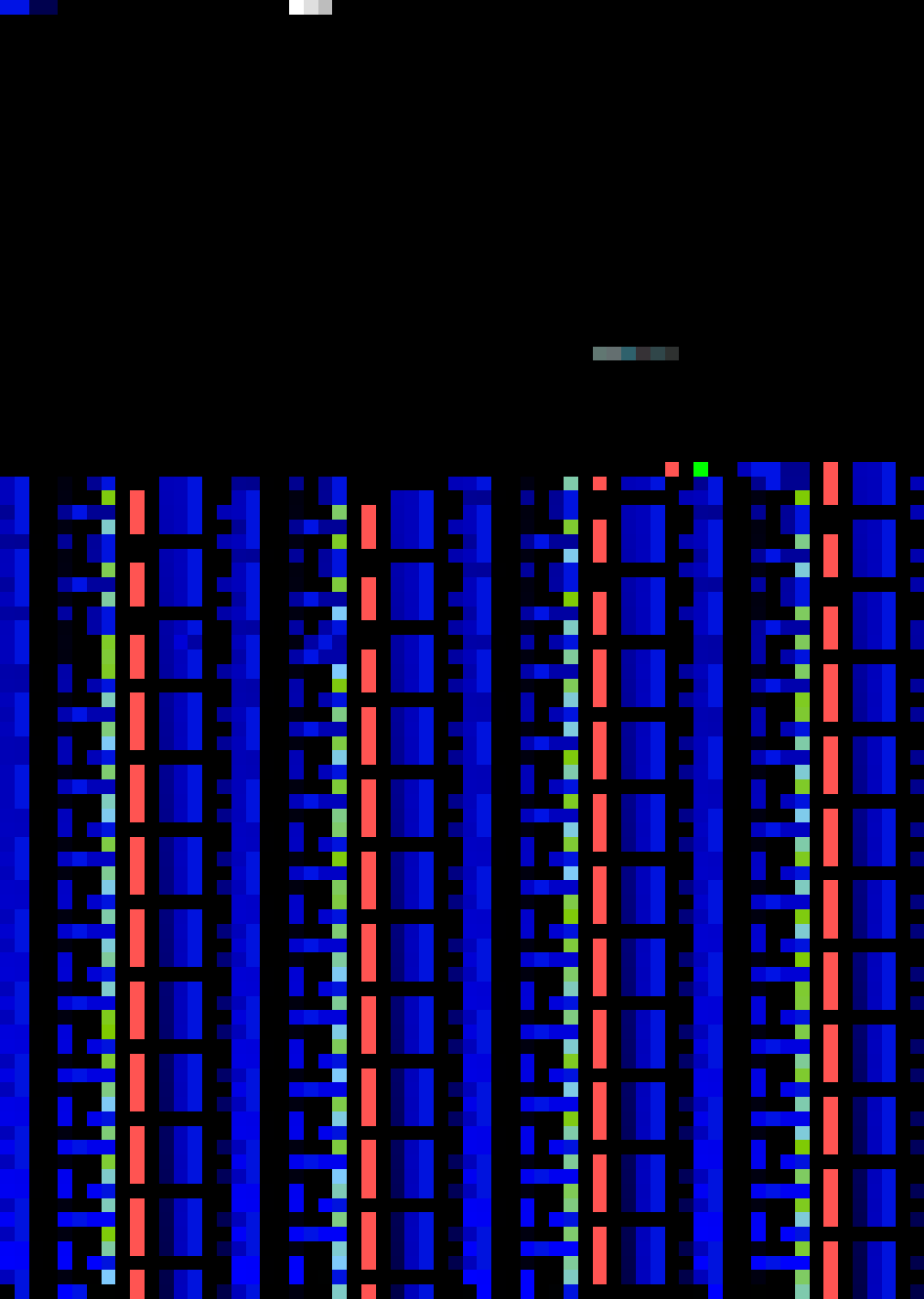
नामक संग्रह में आपकी 'लंकादहन के पश्चात् हनुमान का पश्चात्ताप'—शीर्षक भिन्नतुकांत कविता को साग्रह स्थान प्रदान किया। और, जब आप पटना में थे, तब वहाँ वयोवृद्ध साहित्य-सेवी आरा-निवासी बाबू शिवनन्दन सहाय के सहवास एवं प्रोत्साहन से आप काशी तथा पटने के तत्कालीन कवि-समाजों में समस्या-पूर्तियाँ भेजने लगे, जो उनके संग्रहों में क्रमशः प्रकाशित होती रहती थीं। यों तो आपकी रचनाएँ अभ्युदय, शिक्षा, कमला, श्रीकमला, शारदा, क्षत्रिय-मित्र, नागरी-प्रचारक, निगमागम-चंद्रिका, मनोरंजन, महिला-दर्पण, साहित्य-पत्रिका, नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (काशी और आरा) आदि पत्र-पत्रिकाओं में बराबर छपती रही हैं और आज भी वर्तमान काल की कितनी ही प्रसिद्ध पत्रिकाओं में छपा करती हैं। पर केवल स्फुट रचनाओं तक ही आपकी साहित्य-सेवा सीमित नहीं, आपने कई छोटे-बडे ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनमें कुछ प्रकाशित और कुछ अद्यापि अप्रकाशित हैं। आपकी पुस्तकों में 'भ्रातृभाव' (गद्य) और 'भक्ति' (गद्य), 'रसाल' और 'नृपसूयस्ति' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'निगमन और आगमन' नामक एक गद्य-पुस्तक काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा भी प्रकाशित हुई है। 'वनिता-विनोद-समालोचना,' 'पाश्चात्य-नैतिक-दर्शन' आदि आपकी कई गद्य-पुस्तकें अप्रकाशित भी हैं। आपकी खडी बोली की कविताओं का एक अच्छा-सा संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इस समय आप 'कविता की भाषा' नामक एक विचारपूर्ण समालोचनात्मक ग्रंथ लिख रहे हैं। अभी तक आपकी कविताओं का कोई अच्छा संग्रह नहीं निकला था, यद्यपि 'कविता-कुसुम' नाम से एक छोटा-सा खड़ी बोली का संग्रह पहले प्रकाशित हो चुका है।

आपका स्वभाव बड़ा ही कोमल है, जैसा कि एक आदर्श साहित्यिक का होना चाहिए। आप परम सहृदय, सुरसिक, मधुरभाषी, सदाशय

कर्त्तव्यनिष्ठ और धर्मपरायण श्रद्धालु व्यक्ति हैं। आप लगभग समस्त भारत के मुख्य-मुख्य तीर्थों का पर्यटन कर चुके हैं।

पुस्तक पढ़ते समय पाठक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अनेक सरस एवं चित्ताकर्षिणी उक्तियाँ पावेंगे, और तब सहज ही अनुमान कर सकेंगे कि आपकी रचनाओं में किस हद तक और किस खूबी के साथ स्वाभाविकता, भाव-प्रवणता, शब्द-सौष्ठव एवं माधुर्य का निर्वाह हुआ है। कई कविताओं में आपकी सुरुचि, भावुकता, रसज्ञता सामयिकता और मार्मिकता स्पष्ट झलकती है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कविता-प्रेमी सज्जन इसका समुचित सत्कार करेंगे।

काशी, १९२५ —(आचार्य) शिवपूजन सहाय

प्रथम सर्ग

मन-वचनों से परे, धरे अवतार मनोहर।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिदेवों के आश्रयकर॥
नव घन-तन पर परम पीत पट शोभा पाता।
मानो शिशु रवि नील-शैल पर कर फैलाता॥
वर सेना-युत सात्यकि-सहित रथ पर बहु आयुध धरे।
वह दूत-वेष श्रीकृष्ण का हम सबका मंगल करे॥

सुन सञ्जय-वृत्तान्त युधिष्ठिर हरि से बोले।
वचन हृदय से कढ़े विनययुत नय पर तोले॥
शुभचिन्तक हो अहो कृष्ण ! तुम सदा हमारे।
विपत्-काल में कौन सहायक बिना तुम्हारे॥
सुख-शान्ति चाहते हैं बिना दिये हमारा भाग वे।
है प्रकट कौरवों की कुमति, हंस-वेष में काग वे॥

निश्चित तिथि के बाद राज्य निज हम पावेंगे ।
सम्पत्-सुख कुछ भोग विपत-दुख विसरावेंगे ।।
इसीलिये चिर-शांति-धैर्य से प्रण पाला है ।
व्यर्थ हुआ पर सभी, दाल में कुछ काला है ।।
अब कोई कारण है नहीं, स्निग्ध बन्धु-परिजन-सहित ।
हम अत्याचार सहें अधिक कपट-पूर्ण सीमा-रहित ।।

चाहा ले बस पाँच गाँव झगड़ा तय करना ।
पड़े न जिससे बंधु-वर्ग को रण में मरना ।।
इतने पर भी नहीं नीच कौरव हैं सम्मत ।
बने लोभ से अंध और पाखंडी दुर्मत ।।
हे हरे ! दु:ख की बात क्या बढ़ कर हो सकती भला ।
तुम राजनीति में निपुण हो सोच निकालो कुछ कला ।।

कृष्ण ! हमारे लिये एक-सी जीत-हार है ।
कोई जीते, बन्धु-नाश तो दुर्निवार है ।।
तो भी करके कठिन हृदय हम युद्ध करेंगे ।
अगर जरूरत हुई प्राण तक भी दे देंगे ।।
अति विकट परिस्थिति आ पड़ी, असमंजस, विधि वाम है ।
गति साँप-छुछुन्दर की हुई, बुद्धि न करती काम है ।।

बहुत कहाँ तक कहें, जानते तुम बातें सब।
युग-पक्षों के कुशल के लिये कुछ सोचो अब।।
देख रहे हो स्वयं दैन्य-दुर्दशा हमारी।
दुख पर दुख हैं सहे, धीरता तो भी धारी।।
तेरह वर्षों तक कष्ट सह, अब हम हैं बाहर हुए।
थे छिपे स्यार-से हम कभी, आज निकल नाहर हुए।।

कहा कृष्ण ने—वचन सत्य है बन्धु तुम्हारा।
मैंने जाना स्वयं वहाँ इस बार विचारा।।
पुरी हस्तिना मध्य मान मेरा अतिशय है।
यह अन्तिम उद्योग सन्धि का,जटिल विषय है।।
यदि हुआ सफल मेरा किया, कुल न नष्ट हो पायगा।
अन्यथा तीव्र रण-धार में क्षात्र-वंश बह जायगा।।

धर्मराज ने कहा—उचित जाना न तुम्हारा।
आदर पावेगा न वहाँ सन्देश हमारा।।
राज्य-मोह से बुद्धि गयी है उनकी मारी।
तुम पर अत्याचार करें तो हो दुख भारी।।
दुर्योधन दम्भी है बड़ा ठकुरसुहाती बात - प्रिय।
नृप-धर्म नहीं है जानता, कलह-पात्र उत्पात-प्रिय।।

बोले माधव—डरो न तुम, मैं सभी जानता।
किसी भाँति जाना न वहाँ हूँ व्यर्थ मानता॥
हुआ सफल, तो क्षात्र-वंश का त्राण करूँगा।
न तो अन्त तक शान्ति-प्रचारक कहलाऊँगा॥
यों मेरे दोनों करों में मुद-मोदक सब काल है।
वे मूर्ख उपद्रव कुछ करें, मुझको सबका ख्याल है॥

—वासुदेव! मैं मना नहीं तुमको करता हूँ।
मत समझो, प्रतिपक्ष-वर्ग से मैं डरता हूँ॥
जाओ, सफल मनोरथ हो, सकुशल फिर आओ।
यदि होवे यह नहीं, युद्ध का साज सजाओ॥
फिर सात्यकि को बुलवा कहा,—सजो सुरथ हथियार से।
वर सैन्य साथ उत्साह-युत हो तैयार विचार से॥

कहा भीम ने—हरे, तुम्हें यह स्वयं ज्ञात है।
दुर्योधन की प्रकृति बदलनी कठिन बात है॥
वह है क्रोधी, हठी, दूरदर्शिता-दीन है।
धन के मद से मत्त, लोभ-रत, बुद्धिहीन है॥
वह जाये चाहे जान भी नम्र कभी होगा नहीं।
फट टूट भले जावे, मगर पक्का बाँस झुकता नहीं॥

वह अतिशय है क्रूर, हितू तुमको न जानता।
होगा सहमत कभी, हमारा मन न मानता॥
काल-पुरुष है, भरत-वंश का नाश करेगा।
कुल का कर संहार अन्त में आप मरेगा॥
बस ऐसा करना यत्न तुम किसी भाँति वह शान्त हो।
गृह लगी आग बुझ जाय तो बात बड़ी ही कान्त हो॥

मैं भी हूँ तैयार नरम होने को भाई।
कुल-रक्षा के हेतु सदा है त्याज्य लड़ाई॥
धर्मराज तो सदा नम्रता के ग्राहक हैं।
अर्जुन भी इस वंश-नाश के कब चाहक हैं॥
सुन वचन भीम के शांतिमय हरि अचरज से भर गये।
गोलों से भरी सुतोप से फूल निकल कर झर गये॥

बोले—भैया भीम! कभी तुम तो न नरम थे।
कृष्णा का अपमान याद कर सदा गरम थे॥
क्रोधानल की प्रबल ज्वाल से तुम जलते थे।
टेढ़ी भौंहें किये क्रोध से कर मलते थे॥
क्या कौरव गण की क्रूरता भूल, भाव धारे नये।
क्या भूल गये वनवास-दुख या रिपुओं से डर गये॥

सुन ताने की बात वृकोदर आग हो गये।
छेड़े हुए प्रचंड भयानक नाग हो गये॥
टेढ़ी भौंहें हुईं, लाल आँखें हो आईं।
नस-नस में उत्साह उठा अम्बुधि की नाईं॥
तब लगे फड़कने होंठ भी युग बाँहों के संग में।
जब वह भीमाकृति भीम की चढ़ आई उस रंग में॥

कभी न ऐसा कहो कृष्ण! यह वही व्यक्ति है।
बदल न सकता भीम, भुजा में वही शक्ति है॥
बातें सब हैं याद, प्रतिज्ञा भी है ताजी।
मानव-कुल-कल्याण-हेतु मैं था कुछ राजी॥
तुम साथ रहे हो रात-दिन, पर न मुझे पहचानते।
यह अति अचरज की बात है, मुझको कायर मानते।

—कही हँसी में बात भीम! तुम बुरा न मानो।
तुम्हें जानता खूब, तनिक सन्देह न जानो॥
मुझे न है विश्वास कि ईर्ष्या मिट जायेगी।
रुक जायेगा समर, शान्ति घर-घर छायेगी॥
फिर भी मैं यत्नारूढ़ हूँ शांति-स्थापन के लिये।
पर नहीं जानता कहाँ तक होगा कुछ मेरे किये॥

प्रतिपक्षी ने बात न यदि निज हित की मानी।
लालच में पड़ तुमुल युद्ध करने की ठानी॥
तो न दूसरी राह, रणांगण में उतरेंगे।
सजा व्यूह-दल युद्ध विकट घनघोर करेंगे।
तव बल-विक्रम का पूर्णत: सदा भरोसा है किया।
बस तुम्हें नरम-सा देख के उत्तेजन भर दे दिया॥

फिर अर्जुन ने कहा—सुहृद्वर! बात सही है।
बन्धु-वर्ग से व्यर्थ युद्ध कुछ भला नहीं है॥
शांति असम्भव है, मन में ऐसा मत लाओ।
पहले ही होकर निराश तुम वहाँ न जाओ॥
जग में असाध्य कुछ है नहीं, यत्न सिद्धि का मूल है।
उद्योग सन्धि का है उचित, संशय करना भूल है॥

देव-दैत्य के हितू सदा हैं ब्रह्मा जैसे।
उभय पक्ष के लिए हितू तुम भी हो वैसे॥
भेद-भाव कुछ नहीं चित्त में अपने लाओ।
शान्ति-कार्य के लिये हस्तिनापुर को जाओ॥
दुःशासन-कर्ण-शकुनि-प्रभृति व्यर्थ क्लेश हैं दे रहे।
इनकी न हानि यदि भरत-कुल शान्ति और सुख से रहे॥

—अर्जुन ! तुमने कहा ठीक, पर कौरव पाजी।
न्याय-पक्ष पर कभी नहीं होवेंगे राजी ।।
दुर्योधन निर्लज्ज पाप से सुख है पाता।
तिस पर उसे सदैव शकुनि रहता बहकाता ।।
हा ! मुझे फोड़ने के लिये तुमसे, यत्न बहुत किये।
पर असफल होकर रह गया वह अपना-सा मुँह लिये ।।

वचन-कर्म से यथा-साध्य उद्योग करूँगा।
शान्ति-स्थापन हेतु उठा कुछ भी न धरूँगा ।।
उद्यम बिना न दैव काम देता है हरदम।
निष्फल वर्षा बिना जुती-बोयी सुभूमि-सम ।।
वह राज्य नहीं देगा कभी कहता मेरा चित्त है।
इसलिये सदा रहना उचित सज्जित युद्ध-निमित्त है ।।

याद आ रहा मुझे गो-हरण समय तुम्हारा।
तुम्हें राज्य का दान जिस समय गया विचारा ।।
दुर्योधन ने किन्तु न्याय की बात न मानी।
तिलभर भूमि न युद्ध बिना देने की ठानी ।।
वह निश्चय मारा जायगा इसमें कुछ भी शक नहीं।
पर क्यों मैं अपनी ओर से करूँ शक्ति भरसक नहीं ।।

कहा नकुल ने—बड़े बन्धुओं की जो सम्मति।
तुमने उस पर हरे! दिया है मत उत्तम अति॥
कारण के अनुसार कार्य करना फल पाना।
सन्धि न हो तो बात युद्ध की करके आना॥
यदि मिले तुम्हारा मत नहीं दुर्योधन-मत से वहाँ।
तो निज कर्त्तव्य विचारना, हम सब हैं तत्पर यहाँ॥

प्रथम संधि के लिये शक्ति भर समझा आओ।
पीछे रण के लिये कड़ी धमकी दिखलाओ॥
विदुर-भीष्म-आचार्य द्रोण-बाह्लीक-प्रभृति को।
समझाना सब भाँति अन्ध योधन दुर्मति को॥
हे केशव! वक्ता तुम सदृश, विदुर सदृश श्रोता जहाँ।
है कौन कार्य संसार में सिद्ध न जो होवे वहाँ॥

बोल उठे सहदेव तुरत गुस्से के मारे—
शान्ति-घोष से ऊब उठे हैं कान हमारे॥
कृष्णा का अपमान सभा में कौरव द्वारा।
जा सकता है नहीं किसी विधि कृष्ण! बिसारा॥
हैं जब तक साँसें चल रहीं, जब तक भुजा सशक्त है।
मैं कभी न भूलूँगा उसे जब तक तन में रक्त है॥

वह घटना अति घोर याद कर अब भी भारी।
रुधिर खौलता अहो! देह का मेरी सारी॥
जी में आता अगर अकेले में पा जाऊँ।
दुर्योधन को अनुज सहित कच्चा खा जाऊँ॥
क्या शान्ति-सन्धि ही दण्ड है उस अक्षम्य अनर्थ का।
अब तो सन्देश मिलाप का आडम्बर है व्यर्थ का॥

जाओ, जाकर वहाँ युद्ध-प्रस्ताव सुनाओ।
चाहें भी वे लोग सन्धि तो उसे हटाओ॥
भीम-युधिष्ठिर-नकुल-पार्थ सब मेरे भाई।
शान्ति चाहते किन्तु कृष्ण! मैं शीघ्र लड़ाई॥
इस दनुजोचित अपराध का प्राण-दंड ही दंड है।
बस युद्ध-घोषणा जा करो, शेष सभी पाखंड है॥

कहना तुम उस मूर्ख पाप-रत दुर्योधन से।
नर-पिशाच औ' कपट-पूर्ण उसके परिजन से॥
वन में ही हमलोग रहेंगे, कष्ट वरेंगे॥
अथवा अब हस्तिनापुरी का राज्य करेंगे॥
जो "धर्म-धर्म" कह बन्धु-दल "शांति-शांति" चिल्लायगा।
तो एकाकी सहदेव ही बढ़ रण में भिड़ जायगा॥

बोले सात्यकि–साधु-साधु, वर वचन सही है।
वीरोचित सिद्धान्त नीतिमय कथन यही है॥
है जो कोई सत्य-वीर सहदेव यही है।
क्या ही अच्छी बात तत्त्व की सोच कही है॥
कुछ सीमा भी है हे हरे! सहनशीलता की कहीं!
यह कैसा अन्धाधुन्ध है, बात समझ पड़ती नहीं॥

भरी सभा में लाज लूट ली द्रुपद-सुता की।
अतुलनीय दुख दिया और अब है क्या बाकी?
उन्हें न लाज-विवेक-धर्म छू गया कहीं पर।
पशु से भी हैं गिरे, मिला मानव-शरीर भर॥
वे कौरव क्रूर कपूत हैं कुलांगार कलुषी कुमति।
बस उन्हें युद्ध में मारिये, सबसे बढ़कर यह सुमति॥

धन्य-धन्य का हुआ घोर कोलाहल उस छन!
किया जोर से वीर-मंडली ने अनुमोदन॥
सबके मुख खिल गये, युद्ध के हित फड़के सब।
अनायास कर गये आयुधों पर उनके तब॥
बस साधुवाद के साथ ही सिंहनाद होने लगा।
मानो सौभाग्य विपक्ष का फूट-फूट रोने लगा॥

जब तक बातें वहाँ हो रही थीं कुछ ऐसी।
तब तक चुप द्रौपदी खड़ी थी गूँगी-जैसी।।
नम्र दीन वीरत्व-शून्य पतियों के भाषण।
सुन उदास-सी बनी कुढ़ रही थी मन-ही-मन।।
पर सात्यकि औ' सहदेव की थी वाणी दृढ़तम खरी।
इसलिये उसे सुन हो उठी वह प्रसन्न, मन में हरी।।

बोली—भगवन् कृष्ण! शत्रु-सूदन! यदुनन्दन!!
तुमसे कुछ भी नहीं छिपा है शोक-निकन्दन!!!
जो मंगलमय समय रहा चिरकाल अपेक्षित।
जिसकी आशा किये अभी तक मैं हूँ जीवित।।
वह बड़े भाग्य से आ गया अतिशुभ अवसर आज है।
पर हा! मेरे पति चाहते करना काज अकाज हैं।।

जो दुःखाग्नि सदैव हृदय को रही जलाती।
दी उसमें सबने कुसन्धि-आहुति मन-भाती।।
केवल हैं सहदेव एक मेरे अनुमोदक।
और सहित सात्यकि के हैं बहु-जन प्रतिशोधक।।
ये धन्य-धन्य हैं वीर सब, निज कुल-गौरव कान्ति-कर।
इनकी माताएँ वस्तुतः पुत्रवती महिला-प्रवर।।

यह मेरा सौभाग्य एक मम ऐसा पति है।
वीर-सुलभ प्रतिशोध-भाव-युत जिसकी मति है।।
जो हो, मेरा है न आपसे कोई बढ़कर।
यह सच है, अत्युक्ति नहीं समझो, यादव-वर।।
जब-जब अतिसंकट है पड़ा, तब-तब हुए सहाय हैं।
बस तुम्हें छोड़ इस विपत् में हे हरि ! सब निरुपाय हैं।।

भरी सभा में जहाँ दुष्ट कौरव थे सारे।
मुँह नीचे निज किये रहे पांडव पति प्यारे।।
हतोत्साह बन गये, गयी उनकी मति मारी।
गुरु-जन भी चुप रहे हाय ! घटना थी न्यारी।।
जब व्याकुल हो चिल्ला उठी उठा बाँह पट छोड़ के।
तब झट पहुँचे तुम वसन बन वाहन से मुँह मोड़ के।।

वरणावत, माकन्द और अविथल, वृकथल यक।
ये ही पाँचो गाँव सन्धि में रक्खे बेशक।।
धर्मराज ने सञ्जय से सन्देश दिया है।
योधन ने स्वीकार इसे भी पर न किया है।।
तुम सभी जानते उचित क्या, अर्थग्रहण उत्तम कहीं।
बस पूरा राज्य लिये बिना कभी सन्धि करना नहीं।।

प्रथम साम औ' दाम काम में लाकर देखा।
सिद्धि मिली कुछ नहीं, दंड का है अब लेखा॥
जो अघ परम अवध्य जीव का वध करने से।
वही वध्य के प्राण अभद्र नहीं हरने से।
है कौन वध्य संसार में इनसे वढ़ करके कहो।
मिलने-जुलने की वात अव अहो प्रभो नाहक न हो॥

पाण्डव औ' पाञ्चाल, वीरवर यादव सारे।
सैन्य सहित संग्राम-भूमि में उतरें प्यारे॥
भीमसेन, अर्जुन, तुम—तीनों हो नेतावर।
मानो ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर मिले परस्पर॥
इस भाँति युद्ध के क्षेत्र में साहस-सहित सिधारिये।
है क्षात्र-धर्म समुचित यही, व्यर्थ न और विचारिये॥

द्वेष-कपट-पाखंड-अनय सब मिला लिये हैं।
क्या-क्या कुत्सित कर्म कौरवों ने न किये हैं॥
प्राणान्तक विष मिला यूप तैयार किया था।
भोजन के हित उसे बिना संकोच दिया था।
फिर लाक्षागृह निर्माण कर हमें जलाना इष्ट था।
हे कृपानिधान ! कहो तुम्हीं, क्या कुछ भी अवशिष्ट था॥

जुआ खेल छल-सहित कपट-पासो के द्वारा।
सब कुछ था हर लिया राज्य-धन-धाम हमारा॥
वन-निवास अज्ञात वास का बंधन डाला।
हम सबने बहु कष्ट झेलकर वह भी पाला॥
वल्कल-परिधान दरिद्र-सा देख पाण्डवों का अहो!
तुम आठ-आठ आँसू हरे! रोये थे अति दुखित हो॥

उस दिन की वह बात आज क्या भूल गयी है।
जो विनम्र हो गये, हुई भावना नयी है॥
नहीं विश्व में अन्य दुःख दारिद्र्य बराबर।
सम्भावित अपकीर्ति मरण से भी है बढ़कर॥
सब भूल जाइये पर नहीं* वह अपमान बिसारिये।
उस भरी सभा में जो हुआ उसको तनिक विचारिये॥

हरे! देखिये छिन्न-भिन्न केशों को मेरे।
तब से बाँधे नहीं, नहीं कंघे हैं फेरे॥
मृदु सुगंध से जो सदैव जाते थे सींचे।
वही गये थे हाय! दुष्ट के कर से खींचे॥
केशव! यह कभी न भूलना जाना करने संधि जब।
इन केशों की वह दुर्दशा रखना याद अवश्य तब॥

शूर-शिरोमणि द्रुपद-राज की मैं हूँ कन्या।
धृष्टद्युम्न की बहन, तुम्हारी सखी सुधन्या॥
परम पराक्रमशील पाण्डु की वधू दुलारी।
देवराज से बली पाण्डवों की हूँ नारी॥
हैं पाँच पुत्र मेरे भले पंचदेव-सम वीरवर।
तो भी मैंने अपमान को सहन किया है धैर्य धर॥

अब न सहूँगी और कृष्ण! कुछ जतन विचारो।
भाई-पति-सुत-सहित शीघ्र अब मुझे उबारो॥
दुर्योधन के साथ दुष्ट दुःशासन पल में।
शकुनि-कर्ण सब भस्म अभी हों समरानल में॥
ये निर्दय नीच कृतघ्न हैं वसुधा के अघ-भार हैं।
बस इन्हें दूर जल्दी करो, ये कलंक-अवतार हैं॥

यह कोमलता व्यर्थ कृपामय! दिखलाते हो।
और व्यर्थ अब मेल वहाँ करने जाते हो॥
भूल कथा मेरी कुसन्धि क्या करवाओगे।
करके रिपु पर कृपा कौन-सा यश पाओगे॥
सब लोग कहेंगे यह सदा निश्चय पाण्डव डर गये।
बस थोड़ी-सी ही भूमि ले रण से तुरत झुकर गये॥
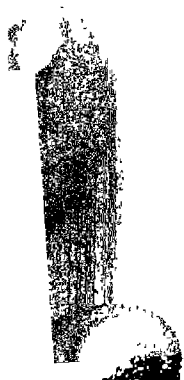
क्या पाण्डव-गण इसे श्रवण कर मौन रहेंगे ?
प्राण जायँ तो जायँ, नहीं यह होने देंगे ॥
अथवा वे यदि सहें मुझे कहना न अधिक है।
अर्जुन के गाण्डीव, भीम-भुज को धिक्-धिक् है॥
तो भी न समर रुक पायगा, होगा रण, संशय नहीं।
क्या माता का अपमान सम सुत भी सह सकते कहीं ॥

पाँचों ही अभिमन्यु-साथ मेरे सुत सत्वर।
उतरेंगे मैदान मध्य सब आयुध लेकर ॥
वीर पिता, बलवान वीर भाई हैं मेरे।
शूर-वीर हैं सुहृद-सैन्य उनके बहुतेरे ॥
जिस समय युद्ध के क्षेत्र में उतर पड़ेंगे वे सभी।
खल पापी कौरव उस समय ठहर सकेंगे क्या कभी ॥

यों कह कृष्णा लगी काँपने और बिलखने।
अति असह्य वेदना हुई, फिर लगी सिसकने ॥
नयन-युगल से उमड़ अश्रु की धार चली वह।
गला रुद्ध हो गया, अधिक वह कुछ न सकी कह ॥
मानो वाणी तत्काल ही शोक-पंक में धँस गयी।
अथवा करुणा मूकत्व के विषम जाल में फँस गयी ॥

सुन विलाप यह देख दशा हरि ने हो व्याकुल ।
कहा, न रोओ और देवि ! मत हो शोकाकुल ।।
नहीं भूल सकता कदापि मैं बात तुम्हारी ।
संधि-कथा के संग जायगी वहाँ विचारी ।।
भर गया घड़ा है जान लो कौरव-गण के पाप का ।
उनका विनाश सन्निकट है और विश्व-परिताप का ।।

जाता हूँ मैं संधि-हेतु पर अति संशय है ।
होगी शान्ति न कभी, युद्ध होना निश्चय है ।।
पाण्डव खोया हुआ राज्य फिर प्राप्त करेंगे ।
कौरव बलि-पशु सदृश समर-मख-मध्य मरेंगे ।।
उनकी कामिनियाँ शोक से रोवेंगी तुमसे अधिक ।
सब भाँति क्लेश की भागिनी होवेंगी तुमसे अधिक ।।

द्वितीय सर्ग

बहती शीतल वायु स्फूर्ति तन में लाई है।
कमल-कोप से मुक्ति भ्रमर-दल ने पाई है॥
तारे धीमे पड़े, प्रभा क्षिति पर छाई है।
चकई चकवा-मिलन हेतु सुख से आई है॥
हैं चहक उठीं चिड़ियाँ सभी वन्दी गुण-गण गा रहे।
समुदित दिनमणि यदुवंशमणि एक संग छवि पा रहे॥

वह विकसाता कमल, सुजन-मुख यह विकसाता।
वह फैलाता ज्योति, कीर्ति यह है फैलाता॥
वह अपार-कर-निकर, अतुल शोभा धरता यह।
वह रजनी-तम घोर, हृदय-तम है हरता यह॥
उससे सरोजनी सकुचती, छिपते पेचकगण सदा।
इससे छिपते औ' सकुचते तस्कर-खल-जन सर्वदा॥

श्रीहरि ने आदेश दिया दारुक को—जाओ ।
निज घोड़ों को खिला-पिला रथ जल्दी लाओ ।।
स्नान-ध्यान से हो निवृत्त कर सन्ध्या-वंदन ।
मंगलमय पुण्याह-पाठ सुन द्विज-अभिनन्दन ।।
प्रज्वलित अग्नि में कर हवन शुभ-सूर्योपासन किया ।
दर्शन कर मंगल-द्रव्य के विप्रों को बहु धन दिया ।।

इसी समय हय जोत सारथी रथ ले आया ।
जो था तीखे हथियारों से गया सजाया ।।
चक्र-गदा-तलवार-तीर-तरकस-धनु अनुपम ।
विविध भाँति के अस्त्र-शस्त्र चमकीले उत्तम ।।
वह रथ उन सबसे यों सजा सुलघु आयुधागार था ।
रहना सचेत अरि-पक्ष से हरि का सुभग विचार था ।।

सजा हुआ रथ खड़ा बड़ा ही वह सुन्दर था ।
रवि-शशि से थे चक्र, चक्रधर का निज घर था ।।
खग-मृग-हरि-अर्द्धेन्दु-मत्स्य-पूर्णेन्दु-सुचिह्नित ।
व्याघ्र-चर्म से मढ़ा पुष्प-मणि-स्वर्ण-सुशोभित ।।
आगे खगराज विराजते अग्र ध्वजा में शक्ति-धर ।
मानो महिमा श्रीकृष्ण की घोषित करते कान्ति कर ।।

मेघपुष्प, सुग्रीव, वलाहक, शैव्य अश्ववर।
ये चारों थे जुते यान में अतिशय सुन्दर॥
इन्दु-बिम्ब से स्वच्छ कुन्द से भी उज्ज्वलतर।
शुभ लक्षण से भरे विलक्षण चंचल गतिधर॥
ये बिना पंख नभ में उड़ें मात पवन को भी करें।
जिस समय चौकड़ी मार्ग में या समरांगण में भरें॥

हृष्ट-पुष्ट तन पुच्छ-गुच्छ कमनीय कनौती।
हिल-हिल देती इन्द्र-अश्व को कड़ी चुनौती॥
कोमल शुभ्र अयाल पाट को भी शरमाती।
चारों खुर मणि-जड़े टाप हैं असुर भगाती॥
युग जोड़े घोड़े परम प्रिय यदु-कुल-कमल-दिनेश के।
नृप-गुण-प्रतिनिधि अथवा खड़े विजय-प्रतीक ब्रजेश के॥

सुन माधव-प्रस्थान विप्र पाण्डव-दल आया।
धर्मराज ने कृष्णचन्द्र को गले लगाया॥
बोले—हे गोविन्द! हस्तिनापुर तुम जाकर।
माताजी के युगल-पदों में शीश नवाकर॥
पहुँचाना आदर के सहित प्रणति हमारी प्रेम से।
कह कुशल यहाँ की बुआ को फिर समझाना नेम से॥

उस दुखिया से कुशल पूछना औ' समझाना।
ढाढ़स देना बार-बार फिर जो बहलाना॥
संकट सहकर किया सदा उपकार हमारा।
दुःख-सिन्धु से हमें स्वयं बन पोत उबारा॥
है एकमात्र उद्देश्य यह मुख्य हमारा वीरवर !
होवे जिस भाँति प्रसन्न वह सब दुःखों को भूलकर॥

सुत-वियोग से दुखी निबल ज्यों-त्यों जीती है।
बड़े कष्ट से सभी आयु उसकी बीती है॥
पुत्र-वत्सला देव-अतिथि-सत्कार-प्रवीणा।
जप-तप औ' स्वस्त्ययन-दान-व्रत में तल्लीना॥
क्या आवेगा कोई समय जब होगी माता सुखी ?
हम केवल उसके दुःख से बने हुए हैं अति दुखी॥

पुत्र-मिलन की आस लिए जीवित है अबतक।
नहीं जानते कष्ट रहेगा उसका कबतक ?
भीष्म-द्रोण-धृतराष्ट्र आदि को प्रणति सुनाना।
कुरु-अमात्य बुध-प्रवर विदुर को गले लगाना॥
जब शांत युधिष्ठिर धीर ने योग्य निवेदन कर लिया।
तब आगे बढ़कर पार्थ ने आलिंगन हरि का किया॥

अर्ध राज्य पर सन्धि हुई थी—सभी जानते।
कहना होगा कुशल न जो अब इसे मानते॥
जो न करेंगा सन्धि प्राणभय छोड़ लड़ेंगे।
वीरमात्र के साथ समर में जूझ पड़ेंगे॥
सुन भीमसेन ने उस घड़ी समुल्लास प्रकटित किया।
कर सिंहनाद मानी सुभट-हृदयों को हर्षित किया॥

लौटे अर्जुन-भीम-प्रभृति सब लोग वहाँ से।
दारुक ने भी किया गमन-उद्योग वहाँ से॥
श्री यदुनन्दन विप्र-वृन्द को शीश नवाकर।
सात्यकि के सँग सुभग यान पर बैठे जाकर॥
मानो उपेन्द्र के संग हैं पुष्पक पर वासव चढ़े।
अथवा श्री दशरथ-सूनु हैं लखनलाल संयुत कढ़े॥

अलसि-पुष्प के रंग-सदृश तन श्याम सुशोभित॥
नवल-नील मणि-ललित-नीलिमा सह अतिभ्राजित॥
पीताम्बर की फबन दामिनी घन में अंकित।
सहज सलोनी रूप-राशि पर मन्मथ मोहित॥
मुख-मण्डल में आँखें युगल विधु में नीले कमल-सम।
आजान-बाहु करिकर-सदृश उन्नत वक्षस्थल परम॥

मोर-पंख का मुकुट मनोहर रत्न-विमण्डित ।
करता था वह स्वच्छ चन्द्र-कर को भी खंडित ।।
काली अलकावली-कलित कुंचित लहराती ।
मकर-सुकुण्डल यथा अनंग ध्वजा फहराती ।।
केसर की खौर विराजती विशद समुन्नत भाल में ।
मानो शशधर की गोद में गुरु बैठे उस काल में ।।

था कातिक का मास रेवती मैत्र मुहूरत ।
अति निर्मल आकाश नील चतुरस्र मेघगत ।।
विमल जलाशय हुए कमल बहु जिनमें पुष्पित ।
पंक रेणु से रहित मार्ग अति स्वच्छ सुशोभित ।।
अति चंचल प्रकृति, जहाँ-तहाँ खंजन चिड़ियाँ फुदकतीं ।
मानो कमला बहु देह धर विहग-रूप में फुदकतीं ।।

स्वच्छ शुद्ध अभिराम सुभग निर्मल धरणी-तल ।
सभी दिशाएँ पूर्ण प्रभा से हुईं समुज्ज्वल ।।
फूल रहे थे भूल डालियों पर उज्ज्वलतर ।
फैला मानो सगुन सत्त्व सब ओर बराबर ।।
शीतल बयार सुखकर सुरभि मन्द-मन्द मादक बही ।
मानो हरि-यात्रा के समय पृथ्वी स्वागत कर रही ।।

घर्घर करके चला यान सब भूमि कँपाता।
मानो अति गम्भीर जलद का शोर सुनाता॥
बड़े वेग से चले अश्व जब-तब हिहनाते।
नभ में उड़ते हुए पक्षियों से बढ़ जाते॥
सड़कें थीं सीधी सुमनमय अति प्रशस्त सर्वत्र सम।
थे वृक्ष कतारों में खड़े किए सदा छाया सुगम॥

दुर्योधन ने जहाँ-तहाँ बँगले बनवाये।
श्रीहरि के विश्राम हेतु सब गये सजाये॥
खान-पान के लिये सभी सामान भरे थे।
सब विधि सुन्दर सुखद सदन में मंच धरे थे॥
वस्तुएँ विलासोचित, अतर, कुसुमहार, पय के घड़े।
हो दास-दासियों के सहित चतुर प्रबन्धक थे खड़े॥

इधर कृष्ण भगवान वेग से चले आ रहे।
उधर हस्तिनापुरी-गगन में मेघ छा रहे॥
अन्नों से भरपूर खेत हैं मार्ग किनारे।
धन-वैभव-युत ग्राम बीच हो कृष्ण सिधारे॥
हो जहाँ-तहाँ एकत्र नर करते बहु सत्कार हैं।
उर में प्रमोद भर के विपुल करते जय-जय-कार हैं॥

जब-जब पुरजन-विप्र-मण्डली आगे आती।
अभिनन्दन कर प्रेम-सहित अभिवादन पाती॥
बाल-वृद्ध नर-नारि देख अनुपम सुख पाते।
आँखों को कर तृप्त स्वजीवन सफल बनाते॥
वृकस्थल पहुँचे, डेरा पड़ा, रवि अस्ताचल को चला।
दिन भर श्रम जो करता रहा क्यों विश्राम न ले भला?

सुख से है सो रही इधर जब कृष्ण-मंडली।
उधर खबर पा मची कौरवों मध्य खलबली॥
अन्धराज ने विदुर नीतिविद् को बुलवाया।
दुर्योधन भी धूर्त, शीघ्र यह सुनकर आया॥
तब लगे बताने विदुर को शिष्टाचार कपट-भरा।
हो तीक्ष्ण हलाहल अमृतमुख कनक-कलश के ज्यों धरा॥

बोले—प्रातःकाल कृष्ण हैं आनेवाले।
युगल-पक्ष के लिये शांति हैं लानेवाले॥
माननीय हैं सदा सभी विधि पूज्य हमारे।
पुरुष-सिंह अति बुद्धिमान हम सबके प्यारे॥
वह यादव-कुल में श्रेष्ठ हैं शूर-शिरोमणि परम-हित।
अति विधिपूर्वक श्रद्धा-सहित पूजन है उनका उचित॥

तुम सब स्वागत करो सजाओ नगर शीघ्रतर।
हम भी उनको भेंट करेंगे विविध वस्तुवर॥
मूल्यवान बहु रत्न, स्वर्ण-मुद्रा, आभूषण।
रथ विमान के सदृश जुते अनुपम तुरंगगण॥
मद बहता है जिनमें सदा दीर्घ-दन्त बहु-मणि-खचित।
देंगे अनेक उपहार में चित्रित-मस्तक गज-प्रथित॥

देंगे सेवक, दास, दासियाँ परम सुन्दरी।
जिनके यौवन-रूप देख हो तपित भी परी॥
पीताम्बर, मणिमाल, मुकुट, कल मुरली देंगे।
भोजन दे स्वादिष्ट परम-सत्कार करेंगे॥
अति हो विनम्र श्रीकृष्ण से सम्भाषण उपयुक्त कर।
हम लेंगे कर राजी उन्हें कहते क्या नीतिज्ञवर॥

कहा विदुर ने—महाराज हैं आप चतुर अति।
माननीय सर्वत्र और विश्वस्त विमल मति॥
रजनीकर में कला, जलधि में लहरें जैसे।
शुभ गुणगण का वास आपमें नृपवर ! वैसे॥
इसलिये हृदय रखिये सदा स्थिर सुविचारों के सहित।
पुत्रों को शुभ मति दीजिये न तो सुनिश्चित है अहित॥

वृद्ध अनुभवी आप सोचते बालक-जैसे ।
होगा कुरु-कुल-नाश, किया जो तुमने ऐसे ।।
रत्नादिक उपहार सभी सत्कार बहाना ।
केशव को इस भाँति बड़ा है कठिन मिलाना ।।
जैसे आँधी के वेग से हिमगिरि हिल सकता नहीं ।
वह महापुरुष उत्कोच से डिग सकता है क्या कहीं ?

निश्चय वह है अतिथि-शिरोमणि सबका प्यारा ।
मोह सकेगा उसे नहीं यह विभव हमारा ।।
यह सारा उपहार न उसका चित्त हरेगा ।
अर्घ्य-पाद्य के सिवा न कुछ भी ग्रहण करेगा ।।
हित-चिन्तक दोनों ओर का शान्ति-हेतु आया इधर !
उसकी सम्मति को मानिये तो हो मंगल नृपति-वर ।।

बोले योधन—ठीक, वचन ये असन्देह हैं ।
अर्जुन-कृष्ण सदैव परस्पर प्राण-देह हैं ।।
देना है इस समय बहुत उपहार न अच्छा ।
धन को देना गँवा पिता ! बेकार न अच्छा ।।
कौरव-गण हैं अब डर गये समझेंगे निश्चय यही ।
जब युद्ध शान्त होगा नहीं है देना तब व्यर्थ ही ।।

कहा भीष्म ने—कृष्ण विज्ञवर धर्म-प्राण हैं।
उनका आदर उचित, स्वजन का परित्राण है ॥
कहें कृष्ण जो उसे सर्वदा हितकर मानो।
परम हितैषी उन्हें सभी के निश्चय जानो ॥
मध्यस्थ बना करके उन्हें कर लो सन्धि, न युद्ध हो।
सुख भोगें सब इस लोक में अपर लोक भी शुद्ध हो ॥

दुर्योधन ने कहा—पितामह ! मैं न डरूँगा।
जीते-जी मैं सन्धि पाण्डवों से न करूँगा ॥
बहुत बड़ा है काम विचारा इस अवसर पर।
वासुदेव को बन्द करेंगे यहाँ पकड़ कर ॥
तब ध्रुव अधीन हो जायँगे पृथ्वी भर के नर-नृपति।
वे सबसे बड़े सहाय हैं पाण्डवगण के तीव्र-मति ॥

सुनकर अनुचित वचन हुए राजा अति दु:खित।
बोले—बेटा ! कहो न ऐसा, यह है गर्हित ॥
नहीं कृष्ण ने कभी किया कुछ अहित हमारा।
कैसे तुमने फिर अनीति का यत्न विचारा ॥
हरि हैं सम्बन्धी परम प्रिय, दूत इसीसे हो रहे।
तुम ऐसे दुष्ट विचार से निज सुबुद्धि भी खो रहे ॥

कहा भीष्म ने—महामूर्ख है योधन अन्धा।
सोचा करता सदा इसीसे दूषित धन्धा ॥
तुम भी तज कर धर्म इसी की बात मानते।
क्या होगा परिणाम अन्त, हम नहीं जानते ॥
जो यह दुर्मति निज कुमति से तनिक उपाधि मचायगा।
तो तुरत कृष्णा-क्रोधाग्नि में सकुल भस्म हो जायगा ॥

यह अनर्थ की खान, अर्थ का पूरा दुश्मन।
स्वार्थ-दास, निर्लज्ज और अतिशय कलुपितमन ॥
इस नर-पशु ने धर्म-कर्म सब छोड़ दिये हैं।
सुनते इसकी बात श्रवण निज मूँद लिये हैं ॥
बस तत्क्षण क्रोधावेश में कहकर सच्चे वचन यों।
उठ गये सभा से देवव्रत सुरा-भवन से विप्र ज्यों ॥

इधर सवेरे रात बीतने पर यदुनन्दन।
शांत-भाव से चले तुरत कर संध्यावन्दन ॥
वृकथल के बहु लोग चले उनको पहुँचाने।
गाते हरि के ललित चरित के सुन्दर गाने ॥
जाते-जाते दोपहर के समय दीखने पुर लगा।
वर सिंहद्वार ऊँचा बृहत् ·जिसमें स्वर्ण प्रचुर लगा ॥
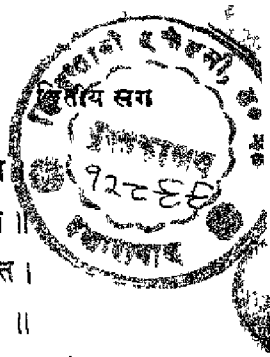
रत्न-जटित वह द्वार दूर से जगमग करता।
मानो ऊपर उगे सूर्य की छबि को हरता॥
चित्रित तोरण चारु सिंह-रूपों से शोभित।
होता है भय जिन्हें देख मानो वे जीवित॥
हैं विविध भाँति की मूर्त्तियाँ जहाँ-तहाँ सुन्दर बनीं।
मन मोहे लेती थीं सदा चार-दिवारी अति धनी॥

चले नगर से बहुत लोग करने अगुआनी
भीष्म द्रोण कृप-प्रभृति वीरवर मानी ज्ञानी॥
दुर्योधन के सिवा पुत्र सब अन्धराज के।
अनुचर सेवक अन्य स्वजन मंडली साज के॥
वे नगर-निवासी थे सजे वस्त्राभूषण से भले।
श्रीहरि-दर्शन की लालसा निज मन में करते चले॥

उन लोगों के साथ कृष्ण ने मिलकर सत्वर।
समारोह से किया प्रवेश नगर के भीतर॥
राजमार्ग थे स्वच्छ गये जल से सिंचवाये।
पथ के दोनों ओर भवन थे खूब सजाये॥
थे मंगल कलस जहाँ-तहाँ मंजु ध्वजा न कहाँ गड़ी!
श्रीहरि के शुभ आगमन से चहलपहल थी उस घड़ी॥

बालक-वृद्ध-जवान बड़े-छोटे दर्शन-हित।
सड़क-किनारे खड़े बड़े ही थे उत्कंठित॥
श्रीहरि का गुण-गान लोग सब करते थे जब।
होता जय-जयकार जोर से भी था जब-तब॥
जिस काम-काज में जो लगे जहाँ सुना हरि आ गये।
वे छोड़ तुरत उस काम को दौड़ रथ-निकट छा गये॥

महलों में थीं लगी काम में जो महिलाएँ।
दौड़ पड़ीं सब छोड़ न देखा दाएँ-बाएँ॥
अग्रभाग ऊपर अटारियों के सब आयीं।
तारावलियाँ यथा गगन में झिलमिल छायीं॥
यों उनके मुख एकत्र हो अनुपम प्रभा पसारते।
मानो बहु रजनीकर-निकर कर-समूह विस्तारते॥

कोई मोती-माल देखना छोड़ चली है।
विकल कहीं कुछ केलि भूल मुँह मोड़ चली है॥
कोई तज शृंगार साट भी सकी न चमकी।
वेणी-बन्धन त्याग तुरत कोई आ धमकी॥
कुछ दूध पिलाना छोड़कर शिशु को, आयीं रथ जहाँ।
मानो भगदड़-सी मच गयी गजगामिनियों में वहाँ॥

उमड़ पड़ा यों जन-समूह क्षण में सागर-सा।
बड़ी भीड़ थी, हुआ राह चलना दुष्कर-सा॥
धीरे-धीरे लगे चलाने दारुक घोड़े।
यद्यपि वे थे पवन-वेग के अनुपम जोड़े॥
जब राजद्वार पर आ गया रथ रुक गया तुरत वहाँ।
श्रीकृष्ण पधारे महल में लगी नृप-सभा थी जहाँ॥

तृतीय सर्ग

सुनकर कृष्णागमन उठे नरपाल उसी क्षण।
भीष्म द्रोण कृप प्रमुख साथ ले सकल सभ्य गण॥
किया सबोंने यथा उचित सत्कार नम्र बन।
श्रीहरि ने भी किया भीष्म औ' नृप का पूजन॥
अनुसार अवस्था के वहाँ सबके मिल भाषण किया।
फिर स्वर्ण-विभूषित मंच पर सम्मुख निज आसन लिया॥

उस परिषद् में कृष्ण हुए इस भाँति विराजित।
तारा गण के मध्य चन्द्रमा जैसे भ्राजित॥
शुचि प्रसन्नता सुभग वदन पर झलक रही थी।
कुंचित अलकों बीच अतुल छवि छलक रही थी॥
भौंहें कमान-सी थीं तनी दुर्जनगण शंकित हुए।
मानो युग शांति-अशांति के भाव वहाँ अंकित हुए॥

आकर कुरु-कुल-राज-पुरोहित ने सादर तब।
जल, मिठाइयाँ और धेनु आगे रक्खीं सब॥
श्रीहरि ने स्वीकार किया आतिथ्य नेम से।
कुशल-प्रश्न फिर हुए परस्पर परम प्रेम से॥
वे बातचीत करने लगे सानुराग हँस-हँस वहाँ।
फिर हिलमिल के सबसे चले विदुर-भक्त-गृह था जहाँ॥

विदुर न थे उस समय, विदुर की थी गृह-रानी।
पाकर अनुपम अतिथि-प्रेम से हुई दिवानी॥
अर्घ्य-पाद्य के लिये दिया हरि को निर्मल जल।
फिर भोजन के लिये दिये मीठे कदली-फल॥
सब ही सुध-बुध वह खो रही विह्वल-रमणी-रत्नवर।
निज कर से छील खिला रही छिलके गूदे फेंककर॥

श्रीहरि थे खा रहे प्रेम के छिलके रूखे।
मानो हों वे महादीन बहु दिन के भूखे॥
तबतक आ ही गये विदुर यह देख तमाशा।
कहा क्रुद्ध हो अरे! नहीं थी ऐसी आशा॥
आ गये त्रिलोकीनाथ हैं बड़े भाग्य से हरि यहाँ।
ये क्या तू उन्हें खिला रही, तेरी बुद्धि गयी कहाँ?

यों कह झट में स्वयं करों में केले लेकर।
छील-छीलकर लगे खिलाने गूदे सत्वर॥
बोले—हे यदुवीर! हुई यह बहुत बुराई।
क्षमा करो कर कृपा हुई जो यहाँ ढिठाई॥
सुन वासुदेव बोले—अहो! करना व्यर्थ विषाद है।
छिलकों में गूदों से कहीं बढ़कर प्रेम-सुस्वाद है॥

नीति-विशारद! सुनो प्रेम ही मुझको प्यारा।
भाव मुख्य है, कभी वस्तु को नहीं विचारा॥
कहा विदुर ने—आज हुए हमलोग धन्य हैं।
दर्शन पाकर सुखी आज हमसे न अन्य हैं॥
फिर कहा कृष्ण ने देर तक पाण्डवगण का हाल सब।
करके विश्राम भले चले श्री कुन्ती के पास तब॥

कुन्ती के घर गये कृष्ण तीसरे पहर में।
वह पुत्रों के मुख्य सहायक को पा घर में॥
लगा गले से लिया उन्हें फूली न समाई।
और उसी क्षण उसे आ गयी खूब रुलाई॥
यों हर्ष-शोक की सम्मिलित मुख पर भावाकृति बनी।
मानो वर्षा में चन्द्रिका उगी विचित्र सुहावनी॥

करुणा की ही विजय हुई तत्काल हर्ष पर।
वहने लगा प्रवाह अश्रु का उष्ण निरन्तर॥
फिर कुछ अपने को सम्हाल बोली—यदुनंदन!
हैं तो मेरे पुत्र कुशलयुत हे जगवन्दन!!
वे अति सुशील धर्मज्ञ हैं घना परस्पर प्रेम है।
अति दृढ़प्रतिज्ञ नीतिज्ञ हैं सत्य-व्रत का नेम है॥

कौरवगण ने कपट-नीति से जुआ रचाया।
मम पुत्रों को वहुत कष्ट दे वन भिजवाया॥
छलनाओं या कपट-जाल का है क्या लेखा।
पत्थर का कर हृदय हाय! हमने सब देखा॥
जब चले विपिन को वे सभी लिये पराजय हाथ में।
रोती मुझको तज कर गये ले माँ का मन साथ में॥

क्या वे थे वनवास-योग्य सुकुमार दुलारे।
जो वे वीर विलम्ब विना वन वीच सिधारे॥
क्या गड़्हों में राजहंस शोभा पाते हैं?
क्या वसन्त-वन छोड़ कहीं कोकिल गाते हैं?
अति कोमल कल शयनीय पर सोते थे जो रात भर।
वे सोते होंगे किस तरह वन में कड़ी जमीन पर॥

उठते थे जो नित्य बन्दियों के गाने सुन।
पटु-मृदंग-रव शंख-नाद घंटी-ध्वनि टुन टुन॥
उठते होंगे वही व्याघ्र के गर्जन सुनकर।
करि-केहरि-वृक-आदि वन्य पशु तर्जन सुनकर॥
हत-भाग्य हमें विधि ने किया राज्य भ्रष्ट करके अहो।
क्या फिर सुख लौटेगा कभी दुख के बाद तुम्हीं कहो॥

लज्जाशील दयालु सत्यव्रत सज्जन नामी।
नहुष-भरत-रघुवर-ययाति-पथ के अनुगामी॥
प्रियदर्शन गुणवान दयानिधि विज्ञानी अति।
गौर-शरीर अजात-शत्रु, धर्मज्ञ तीक्ष्ण मति॥
सम्पूर्ण-विश्व-शासन-निपुण काम-क्रोध-मद-लोभ-गत।
हे कृष्ण! युधिष्ठिर का कुशल सत्वर कहो सुनीति-रत॥

वायु-वेग वर वीर बन्धु का जो प्रिय करता।
दश सहस्र गज-शक्ति देह में है जो धरता॥
इन्द्रियजित अरिदमन दुष्ट कीचक का नाशक।
बक-हिडम्ब का वधिक भयंकर खल-दल-शासक॥
जो विक्रम में है इन्द्र-सा बल में वायु-प्रमाण है।
कैसा मेरा सुत भीम है, वह जो रुद्र-समान है॥

सहस्रबाहु सम बाहु-युगल में बल है पाया।
जीत नृपों को विविध सुविस्तृत राज्य बसाया॥
धनुष-कला में असम और दम में ऋषि ऐसा।
प्रखर सूर्य-सा दीप्त धीर है पृथ्वी-जैसा॥
जो एक साथ ही पांच सौ बाण चला सकता हरे।
वह देवराज का परमप्रिय धनु गाण्डीव स्वकर धरे॥

पृथ्वी भर के शूर शिरोमणियों में सोत्तम।
जिसे जीत सकता न वीर कोई, जो अनुपम॥
कोई बच सकता न युद्ध में जिससे लड़कर।
पाया जिसने अस्त्र पाशुपत शिव का मनहर॥
निश्चय निर्भर हैं पांडुसुत जिसके भुज-बल पर अहो।
वह कृष्ण! तुम्हारा प्रिय सखा कैसा है अर्जुन कहो॥

संकोची सुकुमार बन्धु-सेवा में तत्पर।
कोमल-प्रकृति उदार तरुण मेरा अति प्रियवर॥
सभा-चतुर कर्त्तव्य-कर्म नित करने वाला।
अस्त्र-शस्त्र में निपुण शत्रु-मद हरने वाला॥
वर बन्धु-वर्ग से नित्य ही पाने वाला मान-धन।
हे वासुदेव! सहदेव वह कैसा है माद्री-सुवन॥

कोमलाङ्ग सुकुमार नवयुवक आज्ञाकारी।
परम दुलारा जिसे समझती यह महतारी॥
सुन्दर शील निधान भाइयों का भी प्यारा।
बन्धु-वर्ग-सेवक गुणज्ञ सर्वस्व हमारा॥
जिसको क्षण भर देखे बिना जाती थी बेचैन हो।
वह कृष्ण! पुत्र मेरा नकुल कैसा है मुझसे कहो॥

रूप-शील-लावण्य-शालिनी अति सुकुमारी।
वीर बन्धु जो मुझे स्वपुत्रों से भी प्यारी॥
असामान्य साहसी सती दृढ़-व्रती प्रवीणा।
सदा सुखी पति-संग परम यद्यपि है दीना॥
चौदह वर्षों से हे हरे! कभी उसे देखा नहीं।
क्या वह कल्याणी द्रौपदी कुशल-क्षेम से है सही॥

कृष्णा का अपमान घोर देखा था जब से।
हृदय व्यथा-जर्जरित रहा करता है तब से॥
हा! वह थी ऋतुमती एकवसना दुर्बल-तन।
भरी सभा में केश खींच लाया दुःशासन॥
धृतराष्ट्र-सोम-कृप-प्रभृति थे सभी वहाँ कौरव भरे।
प्रतिवाद किया उनने नहीं रहे देखते सब हरे॥

बैठे जितने लोग सभासद् पंडित नृपवर।
उन सबमें सन्देह नहीं, हैं विदुर श्रेष्ठवर।
बुद्धिमान गम्भीर निपुण नीतिज्ञ महाशय।
धर्म-प्राण विद्वान शील-सम्पन्न सदाशय॥
केवल उनने ही धर्म की बात कही थी उस समय।
पर ध्यान कौन देता जहाँ वातावरण अधर्ममय॥

वे घटनाएँ मुझे अभी भी जला रही हैं।
पतित-दशा में शान्त वृत्तियाँ भला रही हैं?
सब दुःखों के बाद प्रतिज्ञा-बद्ध पुत्र मम।
अब तो हैं हो गये तपाये शुद्ध हेम सम॥
अज्ञात वास के बाद भी हे केशव! क्या देर है?
अपना हिस्सा मिलता नहीं कैसा यह अन्धेर है?

सुनती हैं जब रात बीत जाती है दुख की।
होती है तब प्रभा भाग्य-नभ में रवि-सुख की॥
धर्मराज से कृष्ण! अभी तुम जाकर कहना!
महापाप है बिना राज्य पाये अब रहना॥
जो क्षात्र-धर्म का त्याग कर कलुषित होगे तुम सभी।
तो सदा सर्वदा के लिये दूँगी त्याग तुम्हें अभी॥

सम्यक् यह सन्देश उन्हें कहना समझा कर।
धर्म न छोड़ो कभी श्रेष्ठ क्षत्रिय तन पाकर॥
सह सकती मैं नहीं, तुम्हारा कायर होना।
होगी अति मूर्खता वीर-यश का यों खोना॥
जिस समय-हेतु क्षत्राणियाँ सुत पैदा करती रहीं।
वह समय आ गया है, उठो, अब विलम्ब समुचित नहीं॥

हे हरि! कहना सभी सुतों से यह तुम जाकर।
राज्य प्राप्त तुम करो बाहु-बल निज दिखलाकर॥
बल विक्रम से विभव-प्राप्ति कर्त्तव्य-कर्म है।
वैरी का संहार समर में क्षात्र-धर्म है।
समझाना तुम कह कर यही सभी पाण्डवों को—लला।
कृष्णा क्षत्राणी-रत्न है, उसका मन रखना भला॥

राज्यहरण, वनवास आदि का शोक न वैसा।
कृष्णा का अपमान याद कर दुख है जैसा॥
मुझ माता की प्रीति उन्हें अति आवश्यक है।
करें राज्य तो प्राप्त यही बस एक सबक है॥
क्या भीमसेन जीवित नहीं, भाग गये अर्जुन कहीं?
जो मैं हूँ ऐसी विपत् में, इससे बढ़ अचरज नहीं॥

हरि बोले—हे बुआ! बड़े हैं भाग्य तुम्हारे।
वीर-प्रसू हो सत्य, वीर हैं तव सुत सारे॥
तुम हो सबको पूज्य और कल्याण-रूपिणी।
निज पुत्रों के लिये वस्तुतः प्राण-रूपिणी॥
समयानुसार ही धीर बन दुख-सुख सब सहना उचित।
ज्यों आतप-वर्षा शिखरिणी सहती होकर अव्यथित॥

जाड़ा-गरमी-भूख-प्यास-आनन्द-शोक पर।
निद्रा-आलस-क्रोध-प्रभृति पर विजय प्राप्त कर॥
पाण्डव सकुशल भोग रहे वीरोचित सुख हैं।
भोग-रोग से दूर, शूर चित्त-विषय-विमुख हैं॥
वे महापुरुष तत्त्वज्ञ हैं उत्तम सुख हैं चाहते।
रुचि मध्यम सुख है नहीं, उसको बुध न सराहते॥

अन्तिम सुख ही सौख्य वास्तविक है कल्याणी।
आदि मध्य का सौख्य चाहते अचतुर प्राणी॥
श्रेष्ठ नरों का सदा यही बस बुआ! नियम है।
पहले सह दुख चरम सौख्य पाते उत्तम हैं॥
हे बुआ! न वह दिन दूर है रण में कुरु-कुल-नाश कर।
पावेंगे पाण्डव राज्य अब निज बल-बुद्धि प्रकाश कर॥

कृष्णचन्द्र के वाक्य सुने अति प्रीति-तोष-कर।
कुन्ती ने फिर कहा नीर से नयन-युगल भर॥
नहीं चाहती राज्य-कपट से या कुकर्म से।
होनी बस चाहिये लक्ष्य की पूर्ति धर्म से॥
मैं तव गुण-गण हूँ जानती कर्म-धर्म-मर्मज्ञ हो।
तुम वही करो जिस भाँति अब सफल धर्म का यज्ञ हो॥

हो कुन्ती से बिदा गये फिर कृष्ण वहाँ पर।
जहाँ रहा आसीन सुयोधन उच्चासन पर॥
कर्ण,शकुनि,अन्यान्य नृपतिगण औ दुःशासन॥
घेरे थे सब उसे बिछे थे सुन्दर आसन॥
उठ खड़े हो गये लोग सब हरि को आया देख कर।
नव स्वर्ण-विमण्डित मंच पर बैठाया सत्कार कर॥

भोजन-हित तब किया निमंत्रित दुर्योधन ने।
पर न उसे स्वीकार किया यदु-कुल-नन्दन ने॥
बोले—हे श्री कृष्ण! भला क्यों बिना विचारे।
कहते हो यों बन्धु परम प्रिय अतिथि हमारे॥
तुम हितचिन्तक युग-पक्ष के अर्थ-धर्म हो जानते।
कारण क्या हमसे इस तरह भेद-भाव हो मानते॥

कहा—अतिथि मैं नहीं, दूत बनकर हूँ आया।
शांति-सन्धि-सन्देश यहाँ पर भाई! लाया॥
भोजन करना उचित तुम्हारे यहाँ न तबतक।
इष्ट-सिद्धि में नहीं सफलता पाऊँ जबतक॥
—हे वासुदेव! ऐसा वचन तुम्हें न कहना चाहिये।
हमको सेवा-सत्कार में हरदम रहना चाहिये॥

—होवे चाहे सफल विफल या काम तुम्हारा।
इसका क्यों सम्बन्ध निमंत्रण साथ विचारा॥
यह अति अनुचित, ग्रहण करो आतिथ्य हमारा।
हमसे बैर-विरोध कभी है नहीं तुम्हारा॥
कोई यथार्थ कारण नहीं हमें दीख पड़ता हरे।
जो तुम जैसा आत्मीय जन भोजन अस्वीकृत करे॥

कहा कृष्ण ने—सुनो, धर्म मैं छोड़ न सकता।
धर्म-कर्म से कभी कहीं मुँह मोड़ न सकता॥
बहुधा मनुज परान्न जगत में जो खाते हैं।
उसके दो ही हेतु विश्व में हम पाते हैं॥
पहला अभाव है अन्न का, हेतु दूसरा प्रीति है।
हो हेतु न कोई भी जहाँ भोजन वहाँ अनीति है॥

पाण्डव गण हैं सगे तुम्हारे सब कुल-भूषण।
सन्तोषी सद्गुणी भले भोले गत-दूषण॥
उनसे रखते द्वेष-भाव तुम सदा अकारण।
फिर तुम कैसे, कहो, वैर का करूँ निवारण॥
जो रखता उनसे द्वेष है वह मेरा प्रेमी नहीं।
क्या कभी मित्र के शत्रु से रही मित्रता है कहीं।

काम-क्रोध या लोभ-मोह के वश में होकर।
जो करता है कलह महा वह है जघन्य नर॥
है कोई कुविचार तुम्हारे इस हठ मन में।
खायेंगे हम नहीं तुम्हारे राज-भवन में॥
सुन बात कृष्ण की स्पष्ट यह क्रुद्ध हुए योधन बड़े।
कुछ कह न कृष्ण तत्काल ही विदुर-सदन को चल पड़े॥

भोजन कर विश्राम कर रहे थे श्रीहरि जब।
देख वहाँ एकान्त विदुर भी आ बैठे तब॥
कहा—तुम्हारा हुआ न अच्छा यहाँ आगमन।
दुर्योधन है दुष्ट पातकी उच्छृंखल-मन॥
कृप-भीष्म-द्रोण-कर्णादि भी उसके वश में वीर-वर।
वह मद-मदिरा में मस्त है लड़ने का संकल्प कर॥

सम्भव है यह नहीं, तुम्हारी हित की बातें।
कभी मान ले छोड़ कपट-कैतव की घातें॥
सैन्य नृपों का बड़ा इकट्ठा कर रक्खा है।
भाग न दूँगा कभी इरादा धर रक्खा है॥
उसका है दृढ़ विश्वास, यदि कर्ण अकेले ही चले।
सह सैन्य पाण्डवों को हरा सकता है रण में भले॥

वह अजेय है समझ रहा अपने को यदुवर!
राज्य चाहता सभी, लोभ से ग्रस्त निरन्तर॥
दूरदर्शिताहीन सचिव उसको उकसाते।
अनहित की कह बात नित्य उसको बहकाते॥
होंगे उस खल-दल में हरे! व्यर्थ वचन हित के सभी।
प्रस्ताव सन्धि का ले वहाँ जाना उचित नहीं कभी॥

कहा कृष्ण ने—प्रीति तुम्हारी मुझपर भारी।
तुमने ऐसी बात इसीसे मित्र! विचारी॥
पर मेरा उद्देश्य और ही है आने का।
खल-मण्डल को जानबूझ कर समझाने का॥
मानेंगे मेरी बात यदि तो कौरव सुख पायँगे।
यश मुझको भी मिल जायगा वे सब भी बच जायँगे॥

अथवा यदि उपदेश युक्ति-युत ठुकरा देंगे।
तो भी चिन्ता नहीं, हमारा ले क्या लेंगे ॥
तात! परम सन्तोष रहेगा यही समझकर।
दी थी सम्मति उन्हें सुभग अति मैंने हितकर ॥
सद्धर्म सदा कर्त्तव्य है, फल की आशा छोड़कर।
हैं त्याज्य पाप के कर्म सब मन की ममता तोड़कर ॥

मैं आया हूँ युगल-पक्ष का हो शुभचिन्तक।
दोनों का है कुशल संधि करने में बेशक ॥
यदि कौरवगण शान्ति-मार्ग से हट जायेंगे।
तो निश्चय निज पाप-कर्म का फल पायेंगे।
मेरा अनिष्ट यदि वे कभी करने की इच्छा करें।
तो उस निमित्त तैयार हूँ, आप नहीं कुछ भी डरें ॥

यों कह हरि सो गये स्वच्छ कोमल शय्या पर।
परम चतुर नीतिज्ञ विदुर भी सोये जाकर ॥
दिवस दूसरे, भोर हुआ, लाली नभ छायी।
वैतालिक की मधुर गीत-ध्वनि पड़ी सुनायी ॥
तब उठे कृष्ण प्रातः क्रिया कर सन्ध्या-वन्दन हवन।
नव वस्त्र पहन प्रस्तुत हुए चलने को कौरव-भवन ॥

इसी बीच में शकुनि सुयोधन बोले आकर।
भीष्मादिक, सब कौरव सभा-भवन में जाकर॥
देख रहे हैं राह तुम्हारी हे यदुनन्दन!
किया कृष्ण ने स्नेह सहित उनका अभिनन्दन॥
फिर विदुर संग रथ पर चले उन्हें साथ ले यदुप्रवर।
थे विविध वाहनों पर चढ़े सैनिक भी कितने निडर॥

बहु रथ हाथी अश्व आदि से था दल शोभित।
पदचर भी थे साथ सुरथ जिनसे आच्छादित॥
धीरे धीरे राज-मार्ग से वे जाते थे।
श्रीहरि उनके बीच अजब शोभा पाते थे॥
दर्शन निमित्त श्रीकृष्ण के बूढ़े बालक युवक नर।
सब दौड़ अचानक ही पड़े निर्धन-से धन-राशि पर॥

ललनाएं निज उच्च अटाओं पर जुट आयीं।
ज्यों चकोरियाँ चन्द्र निरखने को उठ धायीं॥
खुली खिड़कियाँ, भवन जान पड़ते थे ऐसे।
आँख फाड़कर देख रहे हों वे भी जैसे॥
चन्दन-जल-सींचे मार्ग हैं, तोरण लटकाये हुए।
कुछ में अपार उत्साह है, कुछ हैं घबराये हुए॥

कौरव दल से बातचीत करके यदुनन्दन।
पहुँचे राजद्वार हुआ समुचित अभिनन्दन॥
आने की पा खबर कृष्ण की परिषद सारी।
कोलाहल के मध्य हुई आनन्दित भारी॥
तब हरि ने सात्यकि-कर पकड़ सभा-प्रवेश तुरत किया।
उनने सदस्य-नृप-निकर का तेज सहज ही हर लिया॥

चतुर्थ सर्ग

वह सुरम्य विस्तीर्ण मनोहर सभा-भवन था।
परम सुशोभित स्वच्छ और चूमता गगन था॥
जिसके चारो ओर हरित सुन्दर उपवन था।
जिससे आता सदा सुगंधित मन्द पवन था॥
अवलोकित कर उसकी छटा सुरपति का परिषद्-भवन।
था लज्जित मन में हो रहा शोभा-सुन्दरता-सदन॥

निकट रम्य तालाब भरा जल विमल सुहावन।
उजले नीले लाल जलज जिसमें मन-भावन॥
कलरव करते विविध विहग सुन्दर हैं जिसमें।
करते क्रीड़ा कुतुक मत्स्य मनहर हैं जिसमें॥
हैं लसित फटिक की सीढ़ियाँ मणिमय फर्श लगा हुआ।
दर्शकगण का मन अचल-सा उनमें पूर्ण पगा हुआ॥

मखमल-सी है घास उगी सम मैदानों में।
चिड़ियों की कल कूज जहाँ पड़ती कानों में॥
जहाँ फुहारे विविध मनोरम छूट रहे हैं।
जहाँ मधुपगण सुमन-सुरस को लूट रहे हैं॥
हैं जहाँ बरसती सरसता कुसुमित लतिका मोहती।
मानो मन्मथ-आदेश से ऋतु वसन्त नित सोहती॥

बहुत बड़ा दालान सुसज्जित परम सुहावन।
स्वर्ण-रत्न से जटित चित्र-मंडित मनभावन॥
बहु मंचों के बीच सजा था राजसिंहासन।
थे पद के अनुसार जहाँ बैठे सदस्य जन॥
वह सभा-भवन शोभा-सदन वर्णित हो सकता नहीं।
बस आँखें हैं जातीं जहाँ उलझी रह जातीं वहीं॥

ऐसे अनुपम सभा-भवन में कृष्ण पधारे।
खड़े हो गये नृपति-समेत सभासद सारे॥
उठे एक ही समय बहुत सिर ऊपर ऐसे।
शान्त वारि-निधि-मध्य ज्वार आया हो जैसे॥
अथवा वह परिषद सिर उठा, सन्धि न हो, यह कह रही।
फिर समर-भूमि में सिर कटे प्रकट चाह कर यह रही॥

हरि ने सबका वहाँ यथोचित अभिवादन कर।
ऋषि-मुनियों को स्नेह-सहित बैठा सुमंच पर॥
ग्रहण किया सम्मान-सहित समलंकृत आसन।
बैठ पास में गये विदुर ज्ञानी प्रसन्न-मन॥
पीताम्बर ओढ़े श्याम-मुख आसन पर यों दिख पड़े।
मानो सुवर्ण मुद्रिका में नीलम के नग हैं जड़े॥

सभी सभ्य चुपचाप एकटक श्रीमाधव को।
रहे निरखते तृषित दृगों से श्रीकेशव को॥
नीरवता थी सभा मध्य, सन्नाटा छाया।
कोई भी कुछ नहीं बोलने आगे आया॥
तब श्रीहरि की वाणी हुई सभाभवन में प्रतिध्वनित।
जैसे पावस में मेघ की ध्वनि नभ में होती त्वरित—

अहो भरत-कुल-दीप! यहाँ जो मैं हूँ आया।
पाण्डव-गण-सन्देश मोद-मंगलमय लाया॥
उसका है उद्देश्य वंश का नाश न होवे।
भरत-भूमि का वीर-वृन्द निज प्राण न खोवे॥
हो युग-पक्षों में सन्धि शुभ कूट-वैर का नाश हो।
दोनों दल मिलें गले-गले भ्रातृप-भाव-विकास हो॥

सदाचार-शुभ ज्ञान स्नेह से और दया से।
सत्यशील सारल्य धीरता और हया से॥
महा प्रतिष्ठित रहा वंश यह सदा आपका।
उचित आपके लिये नहीं है काम पाप का॥
दुर्योधनादि सुत आपके झूठ-कपट की खान हैं।
वे उच्छृंखल उद्दंड अति अत्याचार-निधान हैं।

लालचवश प्राचीन धर्म-मर्याद तोड़ते।
पाण्डवगण के साथ क्रूर होना न छोड़ते॥
अर्थ-धर्म पर दृष्टि नहीं रखते हैं समुचित।
करते हैं व्यवहार अशिष्ट निरा अनियंत्रित॥
इससे कुरु-कुल पर विपत् के बादल हैं मंडरा रहे।
अत्यन्त भयानक ध्वंस के धौंसे हैं घहरा रहे।

राज्य आपके हाथ, राज्य के आप सहारे।
निश्चित सत्यानाश आपके बिना सँभारे॥
समझा के या सभी सुतों को डाँट-डपट के।
शान्त कीजिये, आर मिटें टंटे अटपट के।
है आवश्यक उनके लिये आज्ञा-पालन आपका।
होवे सबका कल्याण, बस, कटे मूल संताप का।

पाण्डव-गण को स्वयं शीघ्र मैं समझाऊँगा।
भीमादिक को शान्त बना करके लाऊँगा॥
दुष्कर क्या है सन्धि बनें यदि आप सहायक।
दृढ़ हों बैर-विरोध विघातक शांति-विधायक॥
ऐसा होने से आपके होंगे लाभ बहुत बड़े।
पाण्डव भी होंगे आपकी सेवा में तब रत खड़े॥

अस्तु, आपकी शेष आयु सुत सहित कटेगी।
स्वजन-वर्ग की लाशों से पृथ्वी न पटेगी॥
पाण्डव-गण को है न खेल रण बीच हराना।
आपस में इसलिये व्यर्थ है रार मचाना॥
यदि दोनों दल के वीर सब आपस में मिल जायगे।
तो निश्चित ही वे विश्व में विजय-ध्वजा फहरायँगे॥

कौरव-पाण्डव क्षीर-नीर-से जो मिल जायें।
त्रिभुवन का साम्राज्य विजय करके सुख पायें॥
पुत्र-पौत्र फिर बन्धु-बान्धवों सहित सुरक्षित।
भोगेंगे सुख आप अतुल ऐश्वर्य-विभूषित॥
है युद्ध महाक्षय नृपतिवर! भरसक इसे बचाइये।
हो वंश-नाश जिससे नहीं, पुत्रों को समझाइये॥

पाण्डव भी तो सगे आपके अति प्यारे हैं।
कभी बुराई की न आपकी, बेचारे हैं॥
छोड़ राज्य-सुख कठिन तपस्या की है, चुप रह।
सत्य-धर्म के हेतु प्रतिज्ञा पाली दुख सह॥
इसलिये न्याय तो है यही उनका हिस्सा दीजिये।
कर बन्द विश्व-विध्वंस अब विमल धवल यश लीजिये॥

बचपन में जब पिता छोड़कर स्वर्ग सिधारे।
पले आपके सदन-मध्य वे पाण्डव सारे॥
किसी पक्ष के मरें वीर, एक ही बात है।
हानि आपकी ही होगी यह पूर्ण ज्ञात है॥
है बहुत उच्च-कुल आपका स्वयं आप धर्मज्ञ हैं।
साहस कर मन दृढ़ कीजिये, राजनीति-मर्मज्ञ हैं॥

यदि होवें प्रकृतिस्थ आप तो सब हो पाये।
बन्धु-बन्धु का वैर एक पल में मिट जाये॥
कौरव-पाण्डव मिलें खोलकर दिल आपस में।
हो जायें सुत और भतीजे अपने वश में॥
ये आये राजा लोग सब वैर भाव को छोड़कर।
आनन्द करें सहभोज हो विग्रह से मुँह मोड़कर॥

निज-निज गृह को अटल शांति सुख-सहित सिधारें।
देशोन्नति की बात कलह को छोड़ विचारें॥
हम सब मिल कर द्वेष-सौध की नीव ढहावें।
करें विश्व-कल्याण प्रेम की धार बहावें॥
हे नृपति-सूर्य ! प्रज्ञा-नयन ! सुनिये अब अति चाव से।
मैं शुभ पाण्डव-सन्देश जो लाया हूँ मृदु-भाव से—

"हे कुरु-कुल-मणि-दीप ! पूज्य पितृव्य हमारे।
अब तक जीवित रहे आपके कृपा-सहारे॥
पिता मानकर हुक्म आपका सब माना है।
दुःखों को भी सदा महा-सुख ही जाना है॥
सहकर बन-दुख बारह बरस, एक बरस अज्ञात-दुख।
हम इस आशा में हैं रहे पावेंगे फिर राज्य-सुख॥

बहुत क्लेश सह किया प्रतिज्ञा का भी पालन।
साक्षी हैं सैकड़ों शुद्ध वनवासी ब्राह्मण॥
धर्म-अर्थ के आप महान परिज्ञाता हैं।
बचपन से ही आप हमारे प्रिय त्राता हैं॥
अब धर्म-मार्ग पर चल स्वयं सब जग में यश लीजिये।
पालन करिए माँ-बाप-सा, राज्य हमारा दीजिये॥"

मुझे अधिक अब और नहीं कुछ नृप ! कहना है।
कहें दूसरे लोग, जिन्हें जो कुछ कहना है ॥
पर अन्तिम यह वचन मुख्य मन में निज धरिये।
युद्ध ठानकर पुत्र-प्रजा का नाश न करिये ॥
सब बातें भले विचार कर, जो रुचि हो करिये वही।
कहना था सो सब कह दिया, अब क्या है बाकी रही ॥

सुनकर यह व्याख्यान कृष्ण का सभ्य नृपति-जन।
हितकर उसको समझ हुए प्रमुदित मन ही मन ॥
सब पुलकित हो गये, मधुर बरसा बिमोह रस।
हुआ किसीको नहीं बोलने का टुक साहस ॥
तब परशुराम ऋषि, कण्व, फिर नारद के भाषण ललित।
दृष्टान्त-सहित क्रमशः हुए युक्ति समन्वित परम हित ॥

दम्भोद्भव-भूपति-घमंड की कथा पुरानी।
परशुराम ने सभा-बीच अति विशद बखानी ॥
कहा अन्त में—सुनो सुयोधन ! कहना मानो।
नारायण-नर अरे ! कृष्ण-अर्जुन को जानो ॥
उनने दम्भोद्भव गर्व तब चूर्ण किया था क्या नहीं ?
उनसे लड़ करके जीतना किसी भाँति सम्भव कहीं ?

कहा कराव ने—हुआ गर्व खगपति को ज्यों ही।
किया विष्णु ने दूर भार कर का धर त्योंही॥
नृपकुमार! अवतार देवताओं के पाण्डव।
समर-भूमि में उन्हें जीतना कभी न सम्भव॥
त्यागो अपने अभिमान को श्रीहरि का कहना करो।
हठकर संयुग में व्यर्थ ही स्वजन सहित मत कट मरो॥

नारद ने फिर उन्हें बहुत-कुछ कह समझाया।
गालव, नहुप, ययाति आदि का वृत्त सुनाया॥
हठ घमंड का परम दुखद परिणाम बताया।
दुर्योधन को किन्तु नहीं यह मन में भाया॥
वह ताल ठोककर जोर से बोला वचन असभ्य अति।
क्या पथ्यौषधि खाता कभी काल विवश रोगी कुमति?

बोले तब धृतराष्ट्र—महामुनि! वचन आपका।
सत्य सनातन विमल, शमन है सकल पाप का॥
पर करना प्रभु! हाय तुम्हारे मत का पालन।
है क्षमता से दूर हमारे लिये तपोधन!
हे कृष्ण! तुम्हारी बात है उचित सुखद हितकर महा।
पर नहीं सुयोधन मानता किसी भाँति मेरा कहा॥

इससे उसको तुम्हीं यत्न करके समझाओ।
बिगड़ चुकी है बात उसे तुम स्वयं बनाओ।
दुर्योधन की ओर फिरे माधव यह सुनकर।
बोले—भैया! वंश तुम्हारा है उज्वलतर॥
तुम शास्त्र-ज्ञान-सम्पन्न हो, सोचो अपना हित-अहित।
मानो अपने माँ-बाप की आज्ञा, होवे परम हित॥

है उनकी यह राय कि होवे सन्धि-स्थापन।
उनकी इच्छा पूर्ण करो अब तुम, सपूत बन॥
यदि गुरुजन की बात नहीं हठ से मानोगे।
तो निश्चय भरपूर अन्त में पछताओगे॥
तज कपटी-दुर्जन-संग तुम पाण्डव से मिलकर रहो।
वे हैं पराक्रमी विक्रमी, सुजनों की संगति गहो॥

बचपन से ही क्लेश उन्हें तुम देते आये।
इतने पर भी क्रोध नहीं वे मन में लाये॥
उत्तर तक भी नहीं अनय का कभी दिया है।
सभी काल में सभ्य भला व्यवहार किया है॥
अब क्रोध त्याग तुम भी वही करो विवेक-निधान हो।
सब मित्र सचिव माता-पिता स्वजनों का कल्याण हो॥

हित-अनहित का तनिक क्रोध में ज्ञान न रहता।
गुरुजन-आदर धर्म आदि का ध्यान न रहता॥
अति शुभचिन्तक बन्धु-वृन्द वैरी कहलाते।
लोक-वेद के मुख्य प्रमाण अनादर पाते॥
हा! ऋषियों के हित-कथन का क्या आदर तुमने किया?
उलटे अशिष्ट व्यवहार से अब अपयश सिर पर लिया।

करो पाण्डवों-साथ मेल सब सोच इस समय।
होवे जिससे भला भविष्य बने अति सुखमय॥
जिनके जीते हुए राज्य को भोग रहे हो।
उनसे ही संयुग का कर उद्योग रहे हो॥
दुःशासन-कर्ण-शकुनि-प्रभृति निश्चय कुसचिव हैं कुजन।
उनपर विश्वास करो नहीं, मानो तुम मेरा वचन॥

वे क्या हैं नरकीट, द्रोण-कृप-भीष्मादिक भी।
अर्जुन का सामना न कर सकते मिलकर भी।
खांडव जलते समय देवगन्धर्व-असुर सब।
नहीं पार पा सके, डटोगे तुम कैसे तब॥
समरांगण में उस वीर से जीत सकोगे क्या कहो।
है कौन तुम्हारे कटक में उसे जीत सकता अहो॥

यदि है कोई उसे सामने मेरे लाओ।
अर्जुन के समकक्ष वीर का नाम बताओ॥
जैसा हो परिणाम पराजय या जय जानो।
युगल पक्ष की हार-जीत उससे ही मानो॥
तुम सोच-समझकर देख लो कुल-विनाश समुचित नहीं।
जब सुलभ मेल हो तो भला कलह सुमति करता कहीं?

वह विराट का युद्ध भयंकर अतिशय अद्भुत।
भूल गये क्या कहो आज हे अंधराज-सुत॥
अर्जुन का क्या याद न है वह अतुल पराक्रम।
है क्या कोई कहो वीर जग में उसके सम?
देखा पशुपति ने पार्थ का स्वयं समर-चातुर्य जब।
तब वर प्रसन्न होकर दिया औरों की क्या बात तब?

रण में मेरे साथ खड़ा होवेगा वह जब।
कौन वीर ललकार सकेगा उसे कहो तब॥
इससे आशा छोड़ व्यर्थ की, होश सँभालो।
उचित भूमि का भाग पाण्डवों को दे डालो॥
गुरुजन-आज्ञा-पालन तथा कुरु-कुल की रक्षा करो।
राज्यश्री को निज कण्ठ से लगा प्रजा का दुख हरो॥

कहा भीष्म ने—बात गलत हरि ने न कही है।
उसके माने बिना न कोई काम सही है॥
धर्म-अर्थ-अनुकूल सुखद सब विधि हितकारी।
कृष्ण-कथन हैं सत्य विपत्ति-निवारक भारी॥
इसीलिए मान करके कहा सावधान होकर चलो।
यौवन-मद में यों भूलकर व्यर्थ नाश मत मोल लो॥

सुन दुर्योधन भीष्म पितामह की यह सम्मति।
बड़े जोर साँस खींचने लगा क्रुद्ध अति॥
कहा विदुर ने पुनः—सुनो हे प्रिय दुर्योधन!
तजो दुराग्रह और आज से बनो यशोधन॥
यों बनो नहीं हठ ठान कर कुलांगार कलुषी कुमति।
कुछ ख्याल करो माँ-बाप का, करो न यों अघ घोर अति॥

बोले प्रज्ञा नयन—पुत्र! अब मत हठ ठानो।
अब भी सोचो पुत्र! कृष्ण की बातें मानो॥
वासुदेव के साथ युधिष्ठिर के घर जाओ।
पूर्ण रूप से शान्ति-सन्धि करके यश पाओ॥
यह अति दयालुता से किया श्रीहरि ने प्रस्ताव है।
पर यदि तुम मानोगे नहीं, हारोगे, न बचाव है॥

कहा द्रोण ने—रहो न कर्णादिक पर निर्भर।
हट जायेंगे बोझ पटक रण में औरों पर॥
जब तक है गाण्डीव धनुष से डोरी खाली।
युद्धाहुति जब तक न धौम्य ऋषि ने है डाली॥
जब तक न भीम लेते गदा दंड-पाणि यमराज बन।
तब तक है अवसर हाथ में, चूको मत, मानो वचन॥

सुनकर सबकी बात अन्त में योधन बोले।
होकर अति उद्दंड वचन माहुर से घोले—
हे यदुपति! कर रहे व्यर्थ मम निन्दा अनुचित।
तुम्हें चाहिये बात समझ कर करनी समुचित॥
है पाण्डु-सुतों में कौन-सा देखा बल-विक्रम महा।
जो अन्धभक्त उनके बने, सुयश भाट-सा है कहा?

वचन तुम्हारा भीष्म विदुर आदिक को भाता।
पर अपना अपराध समझ में मुझे न आता॥
धर्मराज को जुआ खेलने का चसका है।
लगे खेलने शकुनि-संग मेरा वश क्या है?
वे निपुण नहीं हैं खेल में हार गये निज राज्य जो।
मेरी उदारता भी सुनो लौटाया था राज्य सो॥

हुए न थे चुप कृष्ण, बीच में उठ दुःशासन।
बोला आँखें लाल किये—सुन लो दुर्योधन॥
साथी-संगी छोड़ रहे हैं साथ तुम्हारा॥
अब रहना है उचित यहाँ पर नहीं हमारा॥
दुर्योधन को शंका हुई, असभ्यता से हट गया।
दुःशासन शकुनि समेत वह निकल सभा से झट गया॥

तब बोले श्रीकृष्ण गुरुजनों के रुख होकर—
देख रहे क्या आपलोग अन्याय घोरतर॥
इस अशिष्ट मदमत्त युवक का दमन न करते।
है कुल-नाशक मूढ़, आप क्यों शमन न करते॥
इस समय एक ही यत्न है, वह कर्त्तव्य महान है।
हे भरतवंश के नायको! उससे ही कल्याण है॥

दुर्योधन है अबो आप उसको तज देवें।
अपनाने का उसे पूज्य जन! नाम न लेवें॥
जब तक वह परतंत्र न हो, झंझट न मिटेगा।
कुरु-कुल का विध्वंस कभी भी रुक न सकेगा॥
है यत्न यही बस बाँध के पाण्डव गण के हाथ में।
दुःशासन शकुनि समेत ही दुर्योधन को सौंप दें॥

दानव-गण को देव-असुर-संग्राम के समय।
विधि ने सौंपा वरुण देव को बाँध हो अभय॥
कंसराज को बन्धु-बान्धवों ने फिर त्यागा।
विश्व-भलाई-हेतु निहत वह हुआ अभागा॥
तजना कुल के हित व्यक्ति को अति आवश्यक कर्म है।
जो रुचे आप सो सब करें, कहना मेरा धर्म है॥

सुनकर यह प्रस्ताव बहुत धृतराष्ट्र गये डर।
गान्धारी को बुला कहा मन में विषाद भर—
राज्य-लोभ से प्रिये! पुत्र उन्मत्त हो रहा।
हो अशिष्ट वह भले-बुरे का ज्ञान खो रहा॥
हित के उपदेश न मान कर घोर विपन् है ला रहा।
तुम भी समझा देखो उसे, मान जाय शायद कहा॥

—आर्यपुत्र! हो क्षमा, आपकी है दुर्बलता।
लायी है यह विपद आपकी यही सरलता॥
काम-क्रोध-वश विनय-हीन धर्मार्थ-विनाशक।
सुत को दे अधिकार बनाया निन्दित शासक॥
फिर सुत-सनेह से आपने साथ दिया उसका सदा।
यह सभी दोष है आपका, होगा जो होना बदा॥

गान्धारी ने पुनः सुयोधन को बुलवाया।
बहुत देर तक बहुत तरह उसको समझाया—
पिता-पितामह-वचन अहो बेटा! अब मानो।
है इसमें कल्याण तुम्हारा निश्चय जानो॥
हैं काम-क्रोध-मद-लोभ ये चार शत्रु जिसमें भरे।
वह नृप इनको जीते विना राज्य-भोग कैसे करे?

तुम हो इनके दास, भ्रष्ट है बुद्धि बड़ी तव।
राज्य जीतना दूर, न रक्षा भी है सम्भव॥
प्रभुता टेढ़ी खीर, राज्य पाकर भी दुर्जन।
रख सकता है उसे नहीं जब तक है दुर्मन॥
ज्यों गिरा अयोग्य सवार को मार डालता दुष्ट हय।
वश हुए विना त्यों इन्द्रियाँ करतीं मूढ़ मनुष्य-क्षय॥

मन को वश में किये बिना न सचिव वश होते।
बिना सचिव वश हुए नहीं बैरी बल खोते॥
राग-द्वेष-वश नृपति स्वजन से जो छल करते।
निःसहाय वे सदा विपत में दुख सह मरते।
इसलिये दुराग्रह छोड़कर शुभचिन्तक गण का कहा।
तुम बिना विचारे मान लो, होवेगा मंगल महा॥

मित्र बन्धु विद्वान जनों की सम्मति तज कर।
शत्रु-वर्ग का हर्ष बढ़ाता बुद्धि-हीन नर॥
बुद्धि-वीर्य में सदा वीर पाण्डव अतुलित हैं।
वासुदेव की कृपा-छाँह में वे रक्षित हैं॥
दे राज्य-भाग पहले उन्हें अन्धराज ने उस समय।
की थी यह पृथ्वी अरि-रहित, और प्रजाओं को अभय॥

होता उनका अर्ध राज्य है, सबने जाना।
उन्हें बहुत दुख दिया व्यर्थ तुमने मनमाना॥
दे डालो वह भाग, शेष से तुम भोगो सुख।
भाई-मंत्री-मित्र-सहित बिसराओ सब दुख॥
यदि कठिन दुराग्रह छोड़कर हित की बात न मानते।
तो राज्य-प्राण-बलि हेतु ही समर-यज्ञ हो ठानते॥

पाण्डव गण का राज्य पचा जीवित न रहोगे।
रण में उनपर विजय प्राप्त तुम कर न सकोगे॥
दु:शासन या शकुनि कर्ण कुछ कर न सकेंगे।
जिनके बल पर ईश कभी वे मर न सकेंगे॥
ये भीष्म द्रोण वीर-प्रवर युग-पक्षों के हैं स्वजन।
पर पाण्डु सुतों की विनय से वे भी हैं तुमसे विमन॥

यद्यपि ये धर्मज्ञ वृत्तियाँ तुमसे पाते।
पाण्डु-सुतों का शील देखकर हैं सकुचाते॥
युद्ध हुआ तो क्रोध युधिष्ठिर पर न करेंगे।
यद्यपि रण में कूद-कूद कर भले मरेंगे॥
है माता बढ़कर पिता से, मानो मेरी बात तुम!
निज साथ स्वजाति स्वदेश को चौपट करो न तात! तुम॥

गुरुजन को खुश करो पाण्डवों को अपनाओ।
मान कृष्ण-प्रस्ताव स्वजन के प्राण बचाओ॥
अशुभ द्वेष-विद्रोह-डाह को दूर भगाओ।
करो राज्य का भोग सदा सुख-चैन उड़ाओ॥
अति दीर्घ क्लेश अपमान से पाण्डव-गण हैं अति दुखी।
उनकी जलती क्रोधाग्नि में भाग-सलिल दे, हो सुखी॥

सुन माता के परम मधुर उपदेश सुसंगत।
योधन विह्वल क्रुद्ध सभा से उठा असंयत॥
गया वहाँ से जहाँ रहे बैठे अधमाधम।
की सलाह मिल शकुनि आदि से नीच निम्नतम॥
जब माधव मिल धृतराष्ट्र से हमें पकड़ना चाहते।
तब हम पहले ही धर उन्हें बन्दी करना चाहते।

कृष्ण-कैद की बात श्रवण कर पाण्डव सारे।
होंगे जैसे दन्तहीन अहि-गण बेचारे॥
निरुत्साह हो शोक-पंक में धँस जायेंगे।
नहीं सहायक कृष्णचन्द्र को जब पायेंगे॥
अतएव कृष्ण को पकड़कर बन्दी कर लें हम अभी।
जैसे बलि नृप को इन्द्र ने बाँधा था पहले कभी।

सात्यकि को यह कलुष बात हो गयी ज्ञात चट।
कृतवर्मा से कहा हाल उनने आकर झट॥
पड़ सकता है काम, करो सेना सज्जित अब॥
यों कह भीतर गये कृष्ण से कही कथा सब।
फिर विदुर और धृतराष्ट्र से कही कथा षड्यन्त्र की—
हे सुजनवृन्द! हद हो गयी दुष्ट जनों के मन्त्र की॥

धर्म-अर्थ से रहित, सज्जनों से अति निन्दित।
सभी भाँति है कैद दूत को करना गर्हित॥
यह कुचक्र निष्फल अवश्य ही होगा बेशक।
उलटे उनके लिये खुलेगा मृत्यु-द्वार तक॥
है ज्वलित अग्नि को बाँधना पट से पागलपन यथा।
श्रीवासुदेव को पकड़कर करना बन्दी है तथा॥

कहा विदुर ने—महाराज! यह अति अनुचित है।
नीति-धर्म-विपरीत भयंकर यह दूषित है॥
जल जाते हैं ज्यों पतंग गिर दीप-शिखा पर।
त्यों होंगे सब भस्म तेज से हरि के सत्वर॥
हरि को ज्यों गज-बध है सहज, इनका भी है उस तरह।
पर धर्म-प्राण केशव कभी नहीं करेंगे अनय यह॥

बोले तब श्रीकृष्ण—नृपतिवर! पुत्र आपके।
हैं अतिशय उद्दंड छली भण्डार पाप के॥
दे सकता हूँ दण्ड उन्हें मैं अभी अकेला।
कर सकते वे नहीं किन्तु कुछ भी इस वेला॥
कर निंद्य कर्म सकता नहीं, इससे मैं लाचार हूँ।
हाँ, पकड़ बाँध लें वे मुझे, इस निमित्त तैयार हूँ॥

दुर्योधन को अन्धराज ने फिर बुलवाया।
मित्र-मंडली सहित-सभा में वह फिर आया॥
कहा—पुत्र! यह व्यर्थ अनय की बात तजो अब।
बन्दी होंगे कृष्ण? असम्भव है! सोचो सब।
हैं उन्हें इन्द्र भी सुर-सहित कभी पकड़ सकते नहीं।
क्या मूढ़! पकड़ना पवन को कर से है सम्भव कहीं?

होगा जग में कौन अज्ञ का ऐसा दुश्मन।
तुम्हें छोड़, जो यह कुचक्र रचता दुर्योधन॥
क्या सम्भव यह कभी चन्द्र को पकड़े बालक।
वैसी ही भावना तुम्हारी है कुल-घालक॥
हैं दुराधर्ष भगवान हरि, इनसे करो न बैर तुम।
आ जाओ इनकी शरण, जो चाहो अपनी खैर तुम॥

कहा विदुर ने—अरे सुयोधन! बात विचारो।
श्रीहरि की सामर्थ्य अलौकिक जरा निहारो॥
जिनको पकड़ सका न द्विविध कपिराज वीर-वर।
चढ़ विमान पर बड़े-बड़े पत्थर बरसा कर॥
नरकासुर भी असफल रहा जिन्हें पकड़ने में अहो!
क्या कर सकते हो तुम कभी कैद उन्हीं को, सच कहो?

बक-कागासुर-दुष्ट-समूह विदारा जिनने।
केशी औ' चाणूर कंस को मारा जिनने॥
जरासन्ध-शिशुपाल आदि को नष्ट किया है।
बाणासुर-वरुणाग्नि सभी को जीत लिया है॥
उन अति पराक्रमी कृष्ण को नहीं पकड़ सकते कभी।
इसलिये आत्म-हित हेतु हो जाओ शरणागत अभी॥

माधव ने तब कहा विहँस कर—अरे सुयोधन !
बैठे हो क्या मुझे समझकर निस्सहाय जन ॥
पर सच मानो यहाँ सहायक अगणित मेरे ।
पाण्डव अन्धक आदि रुद्र वसु सुर बहुतेरे ॥
तदनन्तर ऊँचे शब्द से अट्टहास हरि ने किया ।
बस तेजपुंज ने जन्म झट उनके अंगों से लिया ॥

विधि मस्तक में, रुद्र हृदय में, अंगों में सब ।
लोकपाल आदित्य साध्य वसु दीख पड़े तब ॥
रजनीचर गन्धर्व यक्ष बहु सायुध आये ।
हल-मूसल-युत राम, पार्थ धनु लिये दिखाये ॥
वे उनके पीछे शेष सब पाण्डव अन्धक आदि नर ।
हल-चक्र-गदा-धनु-शर-प्रभृति भिन्न-भिन्न शस्त्रास्त्रधर ॥

उन समस्त के रोम-रोम नासिका-श्रवण से ।
अति प्रचण्ड रवि-रश्मि निकलती थी लोचन से ॥
अद्भुत अपरम्पार दिव्य था समाँ बँधा वह ।
जिसका कौतुक अकथ, नहीं सकते ब्रह्मा कह ॥
वह घोर रूप भगवान का देख भयातुर हो महा ।
निज आँखें चटपट मूँद कर त्राहि-त्राहि सबने कहा ॥

भीष्म विदुर औ' ज्ञान-खान संजय सुधीर-वर।
सभी हुए बेचैन चकित चित्रित चिन्ता कर॥
देवों ने की पुष्प-वृष्टि दुंदुभी बजायी।
दिव्य दृष्टि धृतराष्ट्र द्रोण दो ही ने पायी॥
वे निर्भय हो उस दृश्य का अवलोकन करने लगे।
कर जोड़ स्तोत्र हरि के रहे करते अद्भुत-रस-पगे॥

कँपी धरा, हो गये जलधि सरिता-सर विचलित।
हुए विकल दिक्पाल तथा दिग्गज अति शंकित॥
पुरुषोत्तम ने पुनः वृहत् वह रूप दिखाया।
अपना पहला रूप सौम्य सबको दिखलाया॥
जब शांति हुई यों, तब तुरत ऋषियों से आदेश ले।
उस सभा-भवन से निकलकर वासुदेव रथ पर चले॥

पंचम सर्ग

हरि के चलते चला पीठ ही पर कौरव दल।
कोई रथ पर बैठ चले, कतिपय जन पैदल॥
मानों पीछे देवराज के चलते सुरगण।
मची खलबली बहुत हुआ कोलाहल उस क्षण॥
सब ऋषि जो आये थे वहाँ अन्तर्धान हुए त्वरित।
उड़ जाते हैं पल में यथा जल-तल से बुद्बुद् कलित॥

ऋषि-मुनियों ने परम तत्त्वमय व्यापक माना।
विद्वानों ने वह विराट वपु अद्भुत जाना॥
वीरों ने आदर्श वीर मन में अनुमाना।
राजनीति-निष्णात-मुकुट राजों ने जाना॥
कुरुकुल ने देखा काल-सम, भक्तों ने भगवान ही।
जिनकी जैसी थी भावना, वैसी हरिमूरत रही॥

कुन्ती के घर पहुँच रथी ने रथ ठहराया।
कृष्णचन्द्र ने उन्हें सभा का हाल सुनाया—
बुआ! सन्धि-प्रस्ताव सभा के बीच किया था।
इसी पक्ष में सब ऋषियों ने स्वमत दिया था॥
पर योधन ने माना नहीं, गुरु-जन-दल समझा थका।
वह शीघ्र मरेगा युद्ध में गिर सबन्धु, ज्यों फल पका॥

अब होता हूँ विदा, कहो जो कुछ कहना हो।
पुत्रों को सन्देश भेजना जो कुछ चाहो॥
कुन्ती बोली—वत्स! युधिष्ठिर से यों कहना।
क्षात्र-धर्म से डिगो न तिल भर, दृढ़ हो रहना॥
है हानि हो रही धर्म की झूठे शांति-प्रचार से।
जनता-पालन, कर्कश समर दोनों करो विचार से॥

देने लगे कुबेर राज्य मुचकुन्द नृपति को।
कहा, विना पुरुषार्थ न लूँगा इस सम्पति को॥
जीत लिये फिर राज्य शक्ति से परम अनूठे।
क्षात्र-धर्म-रत, छोड़ अन्य धर्मों को झूठे॥
निज धर्म पालने में सदा मिलता दुर्लभ देव-पद।
मरने पर मिलता मोक्ष औ' यश जीवन में सौख्यप्रद॥

यदि अधर्म नृप करे, नरक निश्चय ही जावे।
होवे उसकी हँसी, अयश लोगों से पावे॥
नृप न समय अनुसार, समय होता नृप ऐसा।
है निश्चित सिद्धांत, लोक होता नृप जैसा॥
है नृप यथार्थ में नृपति जो युग-परिवर्तन कर सके।
जो जिये प्रजा-हित सर्वदा और उसी हित मर सके॥

बेटो! धारण करो अभी भी राज-धर्म को।
कायरता-दीनता-सरलता तज स्वकर्म को॥
तुम स्वबुद्धि से कर्म इस समय जो करते हो।
उससे मेरी साध आदि केवल हरते हो॥
इसलिये शस्त्र लो हाथ में, शत्रु-पक्ष का मद हरो।
इस मातृ-हृदय को और निज पितरों को भी खुश करो॥

ब्राह्मण भिक्षा-वृत्ति धार जीविका चलावे।
क्षत्रिय लड़कर प्रजा पालकर द्रव्य कमावे॥
वैश्य वनिज-कृषि करे, शूद्र सेवा मन लावे।
यही सनातन धर्म, इसी से नर सुख पावे॥
तुम भीख माँग सकते नहीं, भुजबल से दुख को हरो।
अरिगण के हाथों में पड़ा राज्य प्राप्त जल्दी करो।

क्षीण-पुण्य बन यों न वंश का नाम डुबाओ।
बंधु-बांधवों-सहित नरक में तुम मत जाओ॥
पाँच पुत्र पा परम बली दुख से मरती हूँ।
हा! खा पर का अन्न पेट अपना भरती हूँ—
कहना हे यदुकुल-तिलक, तुम धर्मराज से जा वहाँ।
विदुला-संजय-संवाद यह मैं जो कहती हूँ यहाँ—

"उत्तम-कुल-उत्पन्न एक थी राजकुमारी!
विदुला नामक राजनीति में निपुणा भारी॥
शास्त्र शस्त्र में दक्ष उग्र अतिशय अभिमानी।
क्षात्र-धर्म-निष्णात, नहीं रखती थी सानी॥
संजय नामक उसका तनय सिंधुराज से हार कर।
था दीन हीन घर में पड़ा हो कायर मन मार कर॥

देख पुत्र को लगी कठिन फिटकार सुनाने।
क्षात्र-धर्म का गूढ़ तत्त्व बहु विधि समझाने॥
कहा—अरे तू पुत्र! शत्रुओं का अभिनन्दन।
है तू मेरा पुत्र नहीं, निज वर्ग-निकन्दन॥
उत्पन्न न मेरे गर्भ से, पिता-वीर्य से तू नहीं।
रे कुलांगार, पौरुष-रहित होता क्या क्षत्रिय कहीं?

मरदों में तू नहीं, औरतों में न कभी है ।
तू दोनों के बीच नपुंसक बना सही है ।।
भय-शंकाएँ त्याग शीघ्र बन शत्रु-शूल तू ।
थोड़े में संतुष्ट न हो निज को न भूल तू ।।
होते थोड़ी सम्पत्ति पा तुष्ट-तृप्त कायर कुनर ।
जैसे चूहे की अंजली भरे वस्तु लघु प्राप्त कर ।।

जीवन-आशा छोड़ पराक्रम तू दिखला दे ।
शत्रु-पक्ष को सीख वीरता की सिखला दे ।।
पड़ा न रह तू मरे पुरुष-सा वज्रपात से ।
भिड़ जा बाजी मार बाज की तरह घात से ।।
सुत ! मुँह में विषधर सर्प के दाँत तोड़ने के लिये ।
कर डाल, प्राण देना भला पर न भला तकिया दिये ।।

सोता क्यों बन दीन पराभव अरि से बढ़कर ?
साहस कर उत्साह-सहित लड़ रण में जाकर ।।
मध्यम संधि उपाय भेद है अधम कहाता ।
दान नीच पर दंड यत्न उत्तम कहलाता ।।
बस, कर प्रयोग उस दंड का मित्रों से हो सम्मिलित ।
बहु काल धुआँने से भला होना क्षण-भर प्रज्वलित ।।

तेजहीन अति सहनशील बोझा जो ढोवे।
रासभ-सा सुत कभी न राजा के घर होवे॥
वीर पुरुष पुरुषत्व दिखा हर्षित रहते हैं।
सफल-विफल-निर्लेप, धर्म की गति गहते हैं॥
है जीना क्यों तू चाहता धर्म-विमुख होकर अरे?
बल अपना सब एकत्र कर क्यों न शस्त्र कर में धरे?

गिरते हैं जो वीर शत्रु को ले गिरते हैं।
साहस-तुम्बी धार समर-नद में तिरते हैं॥
दान अर्थ तप ज्ञान आदि से हैं न विभूषित।
माँ के मल-से क्षुद्र पुत्र हैं वे अति दूषित॥
जो मनुज धर्म में, अर्थ में, विद्या में, बल में अधिक।
है नाम कमाता जगत में वही पुरुष है वास्तविक॥

क्रोधशून्य उत्साह-हीन निर्बल सुत ऐसा।
करे न कोई प्रसव वीर नारी तुझ-जैसा॥
करुणा भय संतोष शत्रु पर रण-कायरता।
इनमें से प्रत्येक नष्ट वैभव, धन करता॥
इसलिये पुत्र, इस समय तू आत्मग्लानि को त्याग कर।
कर कड़ा लौह-सम निज हृदय रण में भिड़ जा शस्त्र धर॥

क्षीण और श्रीहीन जनों का कायर जीवन।
ग्रहण न कर तू पुत्र! शीघ्र कर्तव्य-निरत बन॥
ज्यों मेघों से मही, देव वासव से जैसे।
बंधु विप्र पावें सहायता तुझसे तैसे॥
भुज-बल-प्रताप से जो सदा औरों का पालन करें।
वे पुरुष धन्य हैं, धन्य हैं, उनका हरि लालन करें॥

संजय तेरा नाम किंतु तू जय-विरहित है।
कर इसको चरितार्थ इसी में तेरा हित है॥
दरिद्रता से अधिक नहीं दुनिया में दुख है।
क्षत्रिय-जन के लिये विजय-सम अन्य न सुख है॥
बहु बार पराजय हो भले मिले राज्य या मत मिले।
पर तू तजकर उद्योग को तिलभर रण से मत हिले॥

संजय! है रो रही तुम्हारी माँ दुःखित बन।
तेरी पत्नी और अधिक हो रही व्यथित मन॥
अन्याश्रित हो पेट पालना हमें शाप है।
क्षत्रिय जन के लिये भीख माँगना पाप है॥
परिवार वर्ग को पार कर विपत-जलधि में पोत बन।
जो आगे है संकट विकट उसको काट प्रसन्न मन॥

एक शत्रु भी जीत वीरवर यश पाते हैं।
यथा वृत्र-जय-हेतु इन्द्र का गुण गाते हैं॥
अग्र सैन्य को भगा शत्रु के समरस्थल से।
सेनापति को मार पराक्रम औ' कौशल से॥
अरिपक्ष सहज ही वश करें, हों अधीन वे आप ही।
तब साम-दान से प्रकृति के करे स्ववश चुपचाप ही॥

तुझे न देखूँ पुत्र! कभी व्याकुल परिजन-सह।
अरिदल के सामने हीन औ' दीन न तू रह॥
बनी रहे ऐ लाल! सदा तव मुख की लाली।
हँसे न तुमको शत्रु-नारियाँ देकर ताली॥
बस इस कुल में कोई नहीं दास हुआ उत्पन्न है।
यह प्रभुता से, ऐश्वर्य से सदा रहा सम्पन्न है॥

क्षात्र धर्म का मर्म वस्तुतः जाने जो नर।
अरि के सम्मुख सीस झुकाना कभी न डरकर॥
मस्त गजों की तरह वीर वह पुरुष विचरता।
सिवा विप्र-आगे न कहीं नीचा सिर करता॥
जो क्षत्रिय प्राणों को बचा विक्रम दिखलाता नहीं।
कहते बुधजन तस्कर उसे कभी सौख्य पाता नहीं॥

सिंधुराज के पास सहायक सेना धरती।
पर है दुःखित प्रजा, प्रेम-विश्वास न करती ॥
तुझे देख तैयार शत्रु उसके आवेंगे।
राज-नाश के लिये शीघ्र ही मिल जावेंगे ॥
इसलिये सुअवसर है यही इसे न खो निज हाथ से।
तू लाभ उठा उत्साह-युत मित्रवर्ग के साथ से ॥

संजय बोला—जननि! कठिन है हृदय तुम्हारा।
जो तुमने यों प्रेम-पात्र मुझको फटकारा ॥
मैं जो मारा गया युद्ध में तो क्या लोगी?
क्या लेकर के राज्य व्यर्थ, सुख भोग सकोगी?
बोली माता—हे प्रिय तनय! कुछ भी मान बुरा नहीं।
बस तुझसे सच्ची प्रीति-वश बात कड़ी मैंने कही ॥

भेज रही हूँ धर्म-हेतु ही तुझे समर में।
क्षत्रिय भी क्या हार कहीं मरता है घर में ॥
यदि न तुझे आरूढ़ करूँ सच्चे सुमार्ग पर।
कह के बाणों-सदृश तीक्ष्ण उपदेश वचन वर ॥
तो झूठे पुत्र-सनेह की मैं बनती हूँ दोषिणी।
सुत! उभय लोक तेरा बने इसीलिये हूँ रोषिणी ॥

बुध-जन-वर्जित हेय पुत्र ! अघ-मार्ग छोड़ दे।
बेटा ! लज्ज अज्ञान कुमति-शृंखला तोड़ दे ॥
जन्म क्षात्र का हुआ युद्ध औ' विजय-हेतु ही।
शत्रु-पराजय, समर-मरण हैं स्वर्ग-सेतु ही।
सन्नद्ध युद्ध के हेतु हो, विजयी हो अरिवर्ग पर।
मैं गले लगाऊँगी तुझे आदर से हे पुत्रवर !!

—माता ! मेरे पास न तो धन है, न सैन्य है।
यदि कुछ है तो घृणा, पराजय और दैन्य है ॥
तब मैं कैसे लड़ूँ और जय प्राप्त करूँ वर।
स्वर्ग-लाभ-सा राज्य-लाभ है मुझको दुष्कर ॥
यह कार्य सिद्ध किस भाँति हो, जननि ! कहो मुझसे स्वमत।
मैं आज्ञा-पालन के लिये होऊँगा तत्पर तुरत ॥

—लगातार उद्योग सिद्धि का मूल मंत्र है।
विघ्नों से भिड़ पड़े वीर बस वह स्वतंत्र है ॥
असामान्य परिणाम समझ जो यत्न न करता।
उसकी दैव समृद्धि, वृद्धि दोनों ही हरता ॥
बस उद्यम ही पुरुषार्थ है, आलस ही है क्लीवता।
यह कुञ्जी है सब सिद्धि की, इसका बुध-जन को पता ॥

फलाशक्ति को छोड़ युद्ध में जो नर जावे।
राज्यश्री को वही वीरवर गले लगावे ॥
क्रोधी निर्धन दीन-खिन्न धनहीन जनों को।
कर स्वपक्ष में मान-युक्त स्वाधीन जनों को ॥
धन अग्रिम दे मृदु वचन कह फिर अनेक उपकार कर।
यों प्रजावर्ग को फोड़कर सदा प्रीति व्यवहार कर ॥

यों अगुआ तू अनायास अति शीघ्र बनेगा।
गृह-गत पन्नग-सदृश शत्रु भी देख डरेगा ॥
बन्धु-मित्र मुँह ताक रहे हैं पुत्र ! तुम्हारा।
तुझे न तत्पर देख तजेंगे साथ हमारा ॥
तू विकल न हो भय से स्वयं उनको शंकित कर नहीं।
करके एकत्र सुसैन्य सब भिड़ जा रण में, डर नहीं ॥

—माँ ! अब मुझे कठोर वचन कहना न उचित है।
कृपापूर्ण आशीश मुझे देना समुचित है ॥
अब हूँ तव आदेश पालने-हेतु सुतत्पर।
माता से बढ़ और कौन है इस पृथ्वी पर ॥
बोली विदुला—वे अवश्य कटु हैं हितकर मेरे वचन।
क्या बिना पिये कड़वी दवा होता रुज का है शमन ?

सुनकर तेरीबात कली दिल की खिल आई।
बहुत दिनों से पड़ी हाय! जो थी मुरझाई॥
निरुत्साह की आज पुत्र! हो गयी विदाई।
बल-विक्रम ने शीघ्र क्लीवता पर जय पाई।
अब उठ संजय! उत्साह से गुप्त द्रव्य वह ले अभी।
जिसको मैंने अति यत्न से रख छोड़ा था सुत! कभी॥

सुन माता के वचन प्रफुल्लित हो धीरज धर।
धन ले सैन्य बटोर डटा रण में जा सत्वर॥
अरि को किया परास्त राज्य अपना लौटाया।
माँ विदुला ने विहँस तनय को हृदय लगाया॥
जो नर चाहे रण में विजय, जो नारी सुत वीर-वर।
वह अति श्रद्धा से यह कथा सुने सत्य विश्वास कर॥"

...कहना अर्जुन से कि तुम्हारे जन्म अनन्तर।
बैठी सखियों-मध्य सुनी थी नभ-वाणी वर—
"कुन्ती! होगा इन्द्र-सदृश यह पुत्र तुम्हारा।
अतुल पराक्रम तेज-पूर्ण देवों का प्यारा॥
श्रीकृष्ण-भीम साहाय्य से कौरव-कुल का नाश कर।
यह गया राज्य निज बाप का फिर पावेगा वीरवर॥"

…करे विधाता सत्य शीघ्र ही वह नभ-वाणी।
है अवसर आ गया बात यह मैंने जानी॥
करा हवन स्वस्त्ययन शंख सुर-दत्त* बजाओ।
कर में ले गांडीव धनुष रण में चढ़ जाओ॥
तुम चलो दिखाये मार्ग पर सुभ्र जननी के, पुत्रवर!
यह समर यज्ञ होगा सफल मंगलमय कल्याणकर।

कहना केशव! भीम नकुल सहदेव सभी से।
समर-यज्ञ के लिये रहो तैयार अभी से॥
जिस दिन के हित तुम्हें वीर माँ ने जनमाया।
वह दिन है अब बड़े भाग्य से आगे आया॥
कृष्णा के उस अपमान को कभी भूल जाना नहीं।
क्या भार्या की अवमानना सह सकता कोई कहीं?

फिर कहना तुम भाग्यशालिनी द्रुपद-सुता से।
मनस्विनी धर्मज्ञ सती उस शीलयुता से॥
पा तुम-सी आदर्श बहू मैं हूँ अति हर्षित।
पतियों को तैयार करो समझाकर रण-हित॥
हे वासुदेव! मेरी कथा कहना आशीर्वाद दे।
तुम अन्य नहीं, हो परमप्रिय, हितकारी सब भाँति से॥"

---

* सुरदत्त = देवदत्त, अर्जुन के शंख का नाम।

विदा हुए श्रीकृष्ण बुआ को शीश नवाकर।
पकड़ कर्ण का हाथ उसे रथ पर बैठाकर॥
कहा-कर्ण ! तुम चलो कृपा कर पुर से बाहर।
तुमसे कहना मुझे आज कुछ गोप्य वीरवर !!"
फिर जाने पर रथ के वहाँ श्रीहरि बोले—"सुहृद्वर !
तुम वेद-शास्त्र-तत्वज्ञ हो दृष्टि तुम्हारी सूक्ष्मतर॥

नारी का जो पुरुष पूज्य भर्तार सही है।
कन्यावस्था-जात पुत्र का पिता वही है॥
भली भाँति से जन्म-वृत्त निज तुम्हें ज्ञात है।
भैया, मुझको नहीं बताना बहुत बात है॥
जनमें कुन्ती की कोख से तुम विवाह के पूर्व ही।
अतएव शास्त्र की राय में पांडु तुम्हारे बाप ही॥

यों तुम जेठे सुवन पांडु के हुए सुनिश्चित।
चल दो मेरे साथ जहाँ पांडव हैं सुस्थित॥
मैं यह सब वृत्तांत युधिष्ठिर को समझाऊँ।
उन लोगों से तुम्हें राज्य-अधिकार दिलाऊँ॥
मानें तुमको भाई बड़ा पाँचों पांडव प्रेम से।
तब कर्ण ! राज्य-अभिषेक की हो तैयारी नेम से॥

सोने, चाँदी और कलस जलपूर्ण, फूल, फल।
औषधियाँ, मृग-चर्म और चामर, गंगाजल॥
उच्च ध्वजाएँ सभी लोग रमणीय सजाएँ।
भूप-राज्य-अभिषेक योग्य वस्तुएँ जुटाएँ॥
पाँचों पांडव उनके सुअन नृपगण यादवकुल-सहित।
सब करें तुम्हारे चरण में शुभ प्रणाम ईर्ष्या-रहित॥

अग्निहोत्र सम्पन्न करें द्विज धौम्य पुरोहित।
बहु ब्राह्मण वेदज्ञ करें अभिषेक अनिन्दित॥
धर्मराज युवराज बनें, धारें कर चामर।
रथ पर पीछे रहें तुम्हारे भीम छत्र-धर॥
सहदेव नकुल अंधक प्रभृति यादव-गण पांचाल-गण।
होवें अनुचर अभिमन्यु, मैं स्वयं तथा कृष्णा-सुअन॥

द्राविड़ कुन्तल आंध्र आदि के नृप यश गावें।
बंदीजन गुण-गान करें, जयकार मनावें॥
एक-छत्र सम्राट् राज-सुख भोगो अतुलित।
नृप-ताराओं-बीच चन्द्र-सम होवो शोभित॥
सब मित्र तुम्हारे हों सुखी शत्रु दुखित शंकित बनें।
कुन्ती-सुत! भायप सुदृढ़ हो माता पावें सुख घने॥

बेरानबे

—शास्त्रों के अनुसार कृष्ण ! हैं पांडु पिता मम।
किंतु नहीं व्यवहार किया माँ ने माता सम ॥
होते फेंका, मुझे सूत अधिरथ ने पाया।
निज पत्नी को दिया, मुझे निज पुत्र बनाया ॥
संस्कार जातकर्मादि कर शास्त्र-शस्त्र-शिक्षित किया।
कन्याओं से निज जाति की फिर विवाह मुझको दिया ॥

भरा हुआ है पुत्र और पौत्रों से मम घर।
है उनके शुभ सरस स्नेह में उर मेरा तर ॥
रत्न-राशि-ऐश्वर्य अतुल न लुभा सकते हैं।
अखिल विश्व के राज्य मुझे न डिगा सकते हैं ॥
अब अधिरथ मेरे हैं पिता, राधा माता वास्तविक।
कैसे छोड़ूँ उनको कहो न धर्मज्ञ तुमसे अधिक ॥

दुर्योधन का दिया राज्य तेरह बरसों तक।
भोगा मैंने हरे ! सदा सुख से निष्कंटक ॥
मम बल पर ही युद्ध सुयोधन विकट ठानते।
मुझको ही विश्वस्त सभी से अधिक मानते ॥
मैं ही अर्जुन की जोड़ का सुना गया हूँ द्वन्द्व में।
मुझसे न लोभ, भय, बंधु-वध बिलगा सकते हैं उन्हें ॥

दुर्योधन को कभी न धोखा दे सकता हूँ।
उसके हित में सभी अयश खुद ले सकता हूँ॥
क्षात्र-धर्म से विमुख नहीं मैं हो सकता हूँ।
यौवन को तज कभी न सुख से सो सकता हूँ॥
है जान-बूझकर हे हरे! मित्र-द्रोह मेरा अहित।
फिर अधिरथ को भी त्यागना मेरे लिये नहीं उचित॥

हित की बातें प्रणाय मित्रता से हो प्रेरित।
तुमने है जो कही, इसलिये मैं हूँ बाधित॥
पर मैं हूँ यों बँधा, नहीं हट सकता तिल भर।
केवल यह अनुरोध करूँगा तुमसे प्रियवर॥
कहना न पांडवों से कभी यह रहस्यमय बात मम।
अन्यथा कार्य होगा नहीं, बिगड़ेगा सिद्धांत मम॥

धर्मराज यों जान बड़ा भाई मुझको जब।
देंगे अपना राज्य, सुयोधन को दूँगा तब॥
भीमार्जुन सम बन्धु तथा पाकर तुम-सा हित।
धर्मराज ही राज्य करेंगे है यह निश्चित॥
यह रण अवश्य होगा विकट, इसमें कुछ भी शक नहीं।
घन रुधिर-धार से यह धरा, रक्त सनेगी सब कहीं॥

सुनकर बोले कृष्ण कर्ण के प्रति मुसकाकर—
करते हो यह ठीक नहीं श्री को ठुकराकर ॥
बहुत बड़ा साम्राज्य दे रहा हूँ मैं तुमको।
इससे बढ़कर कौन वस्तु प्रिय दूँ मैं तुमको।
हो तुम्हीं स्वयं यह कह रहे निश्चित है पाण्डव-विजय।
पर रणक्षेत्र बन जायगा कलियुग-क्रीड़ा पापमय ॥

कहा कर्ण ने—अहो कृष्ण ! तुम जान-बूझ सब।
क्यों चक्कर में मुझे डालते हो नाहक अब ॥
तुम्हें ज्ञात है ठीक रुकेगा नहीं युद्ध जब।
क्यों मुझको हो फोड़ रहे कौरव गण से तब ॥
उत्पात घोर होते सदा, दारुण सपने दीखते।
मानो अशकुन एकत्र सब करना ऊधम सीखते ॥

करता है शनि क्रूर रोहिणी को अति पीड़ित।
अनुराधा में पड़ा भौम ज्येष्ठा से चालित ॥
शशि-मण्डल का अघ-कलंक है बढ़ता जाता।
राहु-सूर्य के ग्रास हेतु तैयार दिखाता।
हो रहा अशुभ उल्कापतन बार-बार कम्पित मही।
ये सब प्रकटित हैं कर रहे विषम विपत भावी सही ॥

अशकुन हैं हो रहे कौरवों के दल में अब।
पाण्डव-दल में शकुन सुखद होते मंगल सब॥
चातक-हंस-मयूर प्रभृति उनके अनुगामी।
गिद्ध-काक-बक-बाज आदि इनके अनुगामी॥
वे सब प्रसन्न-मन दीखते, ये सब हैं मानस-मलिन
गुरुजन विप्रों के भक्त वे, ये उनके द्वेषी कठिन।

मृग-गण दक्षिण वहाँ, यहाँ पर वाम विचरते।
वहाँ नगाड़े आप बजें, रव यहाँ न करते॥
वहाँ शिविर-नभ-शान्त, यहाँ दिक्-दाह दिखाता।
वहाँ शंखध्वनि, यहाँ शिवा का रुदन सुनाता॥
ये पाण्डव-दल की जीत के लक्षण मुझे दिखा रहे।
हैं कौरव-दल की हार के चिह्न अनेक बता रहे॥

देखा सपना, धर्मराज-सह पाण्डव सारे।
अयुत खम्भ के महल, श्वेत कपड़े हैं धारे॥
अस्थि-राशि पर चढ़े महा आनन्द मनाते।
देह तुम्हारी रुधिर भरी तुम हँसते आते॥
इससे यह निश्चित हो रहा पाण्डव जीतेंगे सही।
हे कृष्ण! तुम्हारी मदद से स्वप्न-अर्थ सच है यही।

समर-यज्ञ इसलिए साधनों सहित रचाओ।
पाण्डव-गण को युद्ध हेतु तैयार कराओ॥
तुम होओ अध्वर्यु, सुयोधन दीक्षा लेवें।
गाण्डीवादिक स्रुवा, शिलीमुख आहुति देवें॥
हो पौरुष घृत, नर-रक्त हवि, नृप बलि-पशु, सेना समिध।
सिंहध्वनि मंगल पाठ हो, यूप पताकाएँ विविध॥

होवें ब्रह्मा धर्मराज, अर्जुन हों होता।
हों सदस्य कृप-द्रोण-शिष्य, अभिमन्युस्तोता॥
उद्गाता हों भीम, सोमरस-घट हों तोमर।
पुरोडाश के पात्र कटे सिर गिरे मही पर॥
वध मेरा अर्जुन-हाथ से कृष्ण! सुनिश्चित धर्म हो।
फिर पीना दुःशासन-रुधिर सोमपान का कर्म हो॥

वीर-मेध में मरें सभी पापी कौरव-नर।
समर-यज्ञ की हो समाप्ति प्यारे यादववर!
कुरु-कुल के विधवा-समूह के रुदन विकल में।
अवभृथ होगा अहो कृष्ण! उनके दृग्-जल में॥
यों मरें न घर में व्यर्थ ही विज्ञ वृद्ध क्षत्रिय-प्रवर।
सब स्वर्ग लोक पावें भले मर कर रण में शस्त्र धर॥

यों कह यदुकुल-कमल-सूर्य को गले लगाया।
फिर उनसे हो विदा उन्हें रथ पर बैठाया॥
अति उदास हो, लौट हस्तिनापुर को आये।
भीष्मादिक को कृष्णचन्द्र के वचन सुनाये॥
है इधर बात यह हो रही उधर कृष्ण जाते चले।
फिर 'उपप्लव्य' में पहुँचकर लगे पाण्डवों के गले॥

× × ×

हुआ सन्धि-सन्देश काव्य सम्पूर्ण यहाँ पर।
अति अद्भुत श्रीकृष्णचन्द्र का दौत्य दिखाकर॥
है कृतार्थ पा कृपा-कोर जिनकी, 'कविकिंकर'।
शिवशङ्कर-कायस्थ-पुत्र लघुमति दामोदर॥
सारन शीतलपुर ग्राम में वास त्रास-हर-श्रीशरजन।
सरयू-सरिता सान्निध्य शुभ, ऋतु वसु ग्रह गणपति-रदन॥

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
७	५	तब	तव
३२	१३	मोती-मल	मोती-माल
३४	५	सबके	सबसे
४१	१३	सुनती है	सुनती हूँ
४३	१२	रुचि मध्यम	रुचि तो मध्यम
६४	८	जोर साँस	जोर से साँस
८५	१०	हँसे	हँसें